Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

SOME ASPECTS OF TECHNOLOGY IN VEDIC PERIOD

NAG PUBLISHERS

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेदकालीन प्रौद्योगिकी

(कुछ आयाम)

SOME ASPECTS OF TECHNOLOGY IN VEDIC PERIOD

BVB Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
339

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyala... ...tiya Vid...

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
के द्वारा प्रायोजित ग्रन्थमाला

वेदकालीन प्रौद्योगिकी

(कुछ आयाम)

SOME ASPECTS OF TECHNOLOGY IN VEDIC PERIOD

सम्पादकः

प्रो॰ ओम्प्रकाश पाण्डेय

(सदस्य-सचिव)

तथा

डॉ॰ श्यामसुन्दर निगम

(संगोष्ठी-समन्वयक)

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya * Bharati
339

नाग पब्लिशर्स

११ए, यू. ए . जवाहर नगर

दिल्ली ११०००७

भारत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित।

नाग पब्लिशर्स

(i) ११ ए, यू. ए. जवाहर नगर, दिल्ली - ११०००७

(ii) जलालपुर माफी, चुनार, मिरज़ापुर, यू.पी.

दूरभाष: २३९५७४४०, २३९१५८८३, २३९६७९७५

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

ISBN ८१-७०८१-५७३-८

प्रथम संस्करण : संवत् २०५९ विक्रमाब्द, सन् २००३ ईस्वी

मूल्य: रूपये ११०.००

BVB Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
339

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग पब्लिशर्स, ११ए, यू.ए., जवाहर नगर, दिल्ली - ११०००७ द्वारा प्रकाशित तथा जी. प्रिंट प्रासेस, ३०८/२, शहजादा बाग, दया बस्ती, दिल्ली - ११००३५ द्वारा मुद्रित तथा मोहन कम्प्यूटर प्वाईन्ट ८ ए. यू. ए./३ जवाहर नगर, दिल्ली - ११०००७ अक्षर योजक।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्राक्कथन

किसी भी राष्ट्र के अभ्युदय के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी सर्वाधिक आवश्यक हैं। वैदिक वाङ्मय के गम्भीर अनुशीलन से विदित होता है कि उस युग में, भारत में ये दोनों ही क्षेत्र अत्यन्त समुन्नत अवस्था में थे। इन क्षेत्रों में, उस काल के भारतीयों ने इतना उत्कर्ष प्राप्त कर लिया था कि हम आज भी उनके विवरणों से, जो वेद-मंत्रों में निहित हैं, बहुत कुछ सीख सकते हैं। इसमें केवल एक ही कठिनाई सामने आती है वह यह कि वैज्ञानिक क्षेत्रों में सामान्यतः कार्यरत व्यक्तियों को वैदिक ज्ञान नहीं है और वैदिक विद्वानों का वैज्ञानिक अभिनिवेश प्रायः नहीं के बराबर है। यदि वेद और विज्ञान की शिक्षा एक साथ दी जाये, तो वैदिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषय में अधिक प्रामाणिक जानकारी सामने आ सकती है – वेद में निष्णात कुछ वैज्ञानिकों ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया भी है।

इस पुस्तक में वैदिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषय में कुछ शोध-निबन्ध सङ्कलित हैं, जो मूलतः म.सा. राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान और कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन के सम्मिलित सहयोग से आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत किये गये थे। इनका प्रकाशन इस विश्वास के साथ किया जा रहा है कि ये वैदिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अधिक तात्त्विक अनुसन्धान करने के लिए हमें उकसाने का कार्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करेंगे। विभिन्न कारणों से हम कुछ शोध-पत्रों को इसमें सम्मिलित नहीं कर सके हैं - उनसे क्षमा-प्रार्थना है।

इनका प्रथमदृष्ट्या सम्पादन सङ्गोष्ठी के समन्वयक डॉ० श्री श्यामसुन्दर निगम जी ने किया था। बाद में इसका संशोधन एवं सन्दर्भ-सन्धाान डॉ० जितेन्द्र कुमार तिवारी ने किया है। फिर भी बहुसंख्यक भूलें रह गयी हैं, जिनके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय
(सदस्य-सचिव),
म.सा.राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शुभाशंसा

– आचार्य श्रीनिवास रथ

वेद और ज्ञान हमारे लिये अन्योन्याश्रित या पर्याय के रूप में निरन्तर अध्ययन और मनन के विषय रहे हैं। पाश्चात्य जगत् में भी ज्ञान के लिये वैदिक साहित्य का स्वागत हुआ, परन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विज्ञान के लिये भी वैदिक साहित्य की ओर ध्यान केन्द्रित होने लगा।

वेदविद्या प्रतिष्ठान के सहयोग से श्री कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन द्वारा जनवरी २००१ में 'वेदकालीन प्रौद्योगिकी के कुछ आयाम विषय पर आयोजित शोध-संगोष्ठी के सत्रों में कुछ ऐसे पक्ष भी रेखांकित हुए हैं, जिन पर भावी अध्ययन की व्यापक संभावनाएँ दिखाई देती हैं। बहुत संभव है कि वैदिक दृष्टि में विज्ञान आज की प्रौद्योगिकी शब्द का ही पर्याय रहा हो।

मुझे विश्वास है कि संगोष्ठी में संकलित आलेखों का प्रकाशन सहमति और असहमति के कुछ ऐसे विवर्त उद्घाटित करने में सहायक होगा जो वेदविद्या और विज्ञान के अध्ययन को अधिक प्रासंगिकता प्रदान करेगा। मेरी दृष्टि में सहमति की अपेक्षा असहमति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का स्वागत होना चाहिये क्योंकि असहमति शोध अध्ययन के लिये जीवन·ऊर्जा का स्रोत है।

अस्तु,

लोककल्याणरक्षार्थं यदि विज्ञानमिष्यते।
वैदिक ज्ञान विज्ञानाध्ययनं सेव्यतां मुदा।। इति शम्।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Co-ordinator's Note

Technology is a part of our intellectual heritage; it is a component of our view of man and of society. While science seeks knowledge to explain the physical world by constructing mathematical theories which are directly or indirectly confirmed positively or negatively by experiments, technology is the sum-total of deliberate human efforts to construct artifacts for human use. Though technology and science are closely interwoven, yet traditionally, technology existed long before the introduction of science, in modern sense of the term. In this connection, it will not be out of place here to mention that though some technologies owe their origin from scientific development in modern times, most of them have emerged independently prior to the advent of modern science.

One must understand that technology is closely interwoven with human values because it is inherent in the conceptual and ethical aspects of human beings and their environment. In this perspective, it will be evident that human cultural and technological

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

developments have remained inter-dependent right from pre-historic period upto date. Taking this phenomena in consideration, I, the Director of Srī Kāverī Research Institute, Ujjain proposed to the authorities of Maharshi Sāndīpani Rāṣtriya Veda Vidyā Pratiṣṭhāna to sanction a proposal to organise a National Seminar on "Some Aspect of Technology in Vedic Period" was organised on 26-27 January, 2001 by MSRVVP & Shri Kaveri Research Institute.

Several Works have come to light, which specifically throw light on various aspects of ancient Indian technology. Such works are contributed by eminent scholars such as Debiprasad chattopadhyaya, Prafulla chanrdra Roy, Nathen Sirin, Henryk Skolimowiski, Earl R. Mac cormas, jacques Elluel etc. Besides a series of scholars belonging to disciplines including alchemistry, surgery and medicines, archaeology, natural sciences, anthropology etc. have contributed several papers on topics related to science and technology in ancient India.

Vedas, being the basic fundament of Indian culture and the un-interpolated and authentic record of hoary past of India, provide sufficient material to throw light on the technologies existing then. Taking this fact into consideration on attempt, in the form of the Seminar, was made to bring out some related aspects. I am happy to say that this attempt of ours

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

bore fruits. Several noteworthy Papers were contributed and lively but serious discussion followed thereafter. In this collection the key papers are being projected for the use of the general and scholarly world. I thank the authorities of the Pratiṣṭhāna, scholars and participants for their whole-hearted co-operation, also to Āchārya Śrīnivāsa Rath for his esteemed foreword.

Dr. S. S. Nigam

(Co-ordinator)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुक्रम

विषय	लेखक	पृ.संख्या
प्राक्कथन	– प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय	iii
शुभाशंसा	– आचार्य श्रीनिवास रथ	v
Co-ordinator's Note	– Dr. S.S. Nigam	vii
शिल्प की वैदिक अवधारणा	– डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	००१-००९
वेदकालीन प्रौद्योगिकी का पक्ष	– आचार्य राममूर्त्ति त्रिपाठी	०१०-०१४
ऋग्वेद में अकाश-रथ	– डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित	०१५-०१८
यज्ञतन्त्र और शुल्बसूत्रों की ज्यामिति	– डॉ. गुणाकर मुळे	०१९-०३७
A Conclusion derived from the work 'Nine steps into the Antiquity of Vedas'	– Dr. Mohan Gupta	०३८-०४८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Symbolic Trends and Tendencies in the Vedic Architecture with special Reference to Yupa	- Dr. Sushila Pant	०४९-०६१
वैदिक काल में शल्य कर्म की विधाएँ	- प्रो. दिनकर गोविन्द थत्ते	०६२-०७२
Vedic Concept of Biosphere	- डॉ. सी. पी. त्रिवेदी	०७३-०७५
वैदिक युग में धातु-विज्ञान एवं खनन प्रौद्योगिकी	- डॉ. आलोक श्रोत्रिय	०७६-०८८
यज्ञाधृत वैदिक अर्थव्यवस्था	- डॉ. विजय पारख एवं श्री विनय चाँदनीवाला	०८९-०९४
वैदिक युग में रसायन	- डॉ. सीताराम दुबे	०९५-१०३
Environmental Consciousness in Atharvaveda	- डॉ. श्रीमती कमलेश शर्मा	१०४-१०९
Vedic Particle Physics : An Introduction	- देवर्षि दिनेश त्रिवेदी	११०-१३०
विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वैदिक सन्दर्भ	- डॉ. रवीन्द्र भारद्वाज डॉ. अशोक त्रिवेदी	१३१-१४३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिल्प की वैदिक अवधारणा

– आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद।
यस्य विज्ञानं शरीरं यो विज्ञानमन्तरो यमत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः।।

(बृहदारण्यक)

वैदिक परम्परा में शिल्प को ही विज्ञान कहा जाता रहा है। अमरकोशकार ने कहा है – मोक्षे धीर्ज्ञानम्, विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः। शिल्प का प्रथम लक्षण ऐतरेयब्राह्मणकार ने किया है– आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पम्। ऐतरेयकार कहता है कि "जितने भी शिल्प और छन्द हैं, वे आत्मसंस्कृति के पर्याय हैं। वे मनुष्य को भीतर से संस्कारित करते हैं। यह सृष्टि देवता का शिल्प है। इसकी अनुकृति से मानुष शिल्प होता है। जैसे मिट्टी का हाथी, धातु के बर्तन, कपड़ा, सोने के गहने या रथ– ये सब शिल्प हैं।

वैदिक ऋषियों ने मनुष्य जीवन के तीन स्तर माने हैं– आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध रूप है। इनके अधिष्ठाता देव प्रजापति, विश्वकर्मा तथा त्वष्टा हैं। इस त्रिविध शिल्प के बाहर कुछ भी नहीं है। यह संसार देवताओं का शिल्प है। इसकी अनुकृति मानुष शिल्प होता है। अतः ऐतरेय महीदास कहते हैं–

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शिल्पानि में शंसन्ति देवशिल्पान्येतेषां वै शिल्पानामुकृतीह शिल्पमधिगम्यते हस्तीकं वासो हिरण्यमश्वतरी रथः शिल्पम्। शिल्प हास्मिन्नधिगम्यते य एवं वेद देवशिल्पानी इम्।

(ऐतरेयब्राह्मण, ६.५.१)

यदि यह संसार शिल्प है तो इस शिल्प का कोई शिल्पकार होना चाहिये। वेदों में इस शिल्पकार की परिकल्पना प्रजापति, विश्वकर्मा और त्वष्टा के रूप में की गयी। ऋग्वेद के दशम मण्डल में ८१वें तथा ८२वें सूक्त में विश्वकर्मा का निरूपण समग्र विश्व के सर्वोच्च शिल्पी के रूप में हुआ है। विश्वरूपी शिल्प की रचना में सहकार के कारण अन्य देवों को भी कहीं-कहीं विश्वकर्मा कहा गया। उदाहरणार्थ इन्द्र और सूर्य का जगत् की रचना में महत्त्व बताने के लिये उन्हें विश्वकर्मा कहा गया (ऋ. ८.८७.२ तथा १०.१७०.४)। विष्णुपुराण १.१५ में त्वष्टा को विश्वकर्मा के चार पुत्रों में से एक कहा गया है। महाभारत (सभापर्व ७.१४) में विश्वकर्मा का जो स्वरूप निरूपित है, यह इन्द्रसभा में अधिष्ठित एक मुनि का है। यमपुरी में यमसदन और जल के भीतर वरुण के महल का निर्माण विश्वकर्मा ने किया (वही, ८.३४ तथा ९.२)। पुष्पकविमान के निर्माता भी ये ही थे (वही, वनपर्व ११४.१७)।

जगत् के सर्वोच्च शिल्पकार विश्वकर्मा को प्रजापति भी कहा गया– प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु– (शु. यजु. १२.६१) तथा प्रजापतिर्विश्वकर्मा (वही, १८.४३)।

त्वष्टा संसार की पृथक्-पृथक् वस्तुओं का निर्माता है। इन्द्र के वज्र तथा विविध आयुधों का निर्माण उसके द्वारा हुआ है।

इस प्रकार विश्वकर्मा, प्रजापति और त्वष्टा का सम्बन्ध शिल्प से है। शिल्प की वैदिक अवधारणा यज्ञ से जुड़ी हुई है। देवता शिल्पी हैं और वे यज्ञ करते हैं। उनकी अनुकृति में मनुष्य यज्ञ करता है। इसलिये यजुर्वेद में यज्ञ के सारे शिल्पियों को आमन्त्रित करने का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विधान है। देवता शिल्प से सम्बद्ध हैं। उषस् को सुशिल्पा कहा गया है।

शिल्प या तकनीकी की वैदिक अवधारणा और आधुनिक विज्ञान की तकनीकी की अवधारणा में मूलभूत अन्तर यह है कि आज के विज्ञान में देवशिल्प की अनुकृति के रूप में मानुषशिल्प की परिकल्पना नहीं है। मानुषशिल्प यहाँ विच्छिन्न और मात्र आधिभौतिकता में अवस्थित है। शिल्प के लिये संकल्प होना आवश्यक है। वैदिक मनीषियों ने अनेक शिल्पों के लिये संकल्प किया था। ये संकल्प चरितार्थ हुए। जल से मन्थन से विद्युत् या Hydro-electricity के उत्पादन की सम्भावना का साक्षात्कार अथर्वा ऋषि ने किया–

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। (यजु. ११.३२)

इसी प्रकार उत्खनन (Drilling) के द्वारा पुरीष्य अग्नि या Oil and natural gas प्राप्त करने का भी संकल्प अथर्वा ऋषि करते हैं–

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः। (वही,११.२८)

यज्ञ सृष्टा द्वारा सृष्टि उत्पन्न करने के प्रक्रिया की अनुकृति है। यज्ञवेदी ब्रह्माण्ड की संरचना की अनुकृति है। संकल्प को भौतिक आकार देने के लिये ज्यामिति की समझ अनिवार्य है। संकल्प की चरितार्थता और ज्यामिति का प्रयोग ये दोनों तत्त्व हम वैदिक ऋषियों के द्वारा निरूपित यज्ञ और यज्ञवेदिका के स्वरूप में पाते हैं। अलग-अलग प्रकार की वेदियों के नाप सृष्टि की समग्र संरचना की झलक देते हैं। डॉ. ए. के. बाग ने Mathematics in Ancient mediaeval India शीर्षक अपने ग्रन्थ ८ में प्रकार की वेदियों के परिमाण निर्दिष्ट किये हैं। इनमें से आवहनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि की वेदियाँ क्रमशः चतुर्भुज, वृत्त और अर्द्धवृत्त के आकार की तथा प्रत्येक एक-एक वर्ग व्यास या ६-६ फीट परिमाण की होती हैं। महावेदी या सौमिकवेदी समद्विबाहु चतुर्भुज के आकार की तथा ९७२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वर्गपद की होती है (एक पद = २ फीट)। सौत्रामणि और पैत्रिकी वेदियाँ भी समद्विबाहु चतुर्भुज के आकार की होती हैं और इनका आकार ३२४ और ३६ वर्गपद होता है। प्राग्वंशवेदी आयताकार ३६ वर्गपद की होती है। चतुरस्र श्यनचित्, वक्रपक्षव्यस्पुच्छश्येन तथा कंकचित् ये तीन वेदियाँ पक्षियों के आकार की ओर साढ़े सात वर्गपुरुष (४५ वर्गफीट) के परिमाण की होती हैं। प्रउग तथा उभयत: प्रउग वेदियाँ समबाहु चतुर्भुज (Rhombus) के आकार की होती हैं और इसका परिमाण भी साढ़े सात वर्गपुरुष (४५ वर्गफीट) है। रथचक्रवित् वृत्ताकार, द्रोणचित् दोने के आकार (Trough) तथा श्मसानचित् समद्विबाहु चतुर्भुज (Isoceles Trapezium) के आकार की होती हैं और इनमें प्रत्येक का परिमाण साढ़े सात वर्गपुरुष (४५ वर्गफीट) होता है।

इनमें आकार में महावेदी सबसे बड़ी होती है। यह सोमयाग में बनायी जाती है, अत: इसे सौमिकी वेदी भी कहा गया। समद्विबाहु चतुर्भुज के आकार में बनी इस वेदी की लम्बाई ३६ पद या ७४ फीट, पूर्व की ओर चौडाई २४ पद या ४८ फीट तथा पश्चिम की ओर चौड़ाई ३० पद या ६० फीट होती है।

प्रत्येक वेदी में कितने आकार की कितनी ईंटें लगेगी इसका विवरण भी शुल्बसूत्रों में दिया गया है।

शूल्बसूत्रों में कर्ण अर्थात् समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की रेखा का माप (Hypotenuse) निकालने की विधि तथा वह प्रमेय भी सुस्पष्ट रूप में प्रतिपादित है, जिसे ग्रीस में पैथागोरस ने प्रतिपादित किया और जो आज पैथागोरस के नाम से ही पढ़ाया जाता है। बोधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रों के अनुसार आयत (Rectangle) के कर्ण (Hypotenuse) आयत के दोनों क्षेत्रफलों को उत्पन्न करता है। यह क्षेत्रफल कर्ण की लम्बाई और चौड़ाई दोनों उत्पन्न करती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुस्तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत् पृथग्भूते कुरुतः, तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम्॥

(बोधा. शुल्ब, १.४८; कात्या. शुल्ब, २.११; आप. शुल्ब, १.७)

यहाँ अक्ष्णया रज्जु का अर्थ है तिरछा (Diagonal) नापना। तिर्यङ्मान चौड़ाई तथा पार्श्वमान लम्बाई। आशय यह है कि एक आयत को बीच से काटा जाये तो दो विषमबाहु त्रिभुज बनेंगे। इन दोनों विषमबाहु त्रिभुजों का अलग-अलग क्षेत्रफल आयत का कुल क्षेत्रफल होगा। शुल्बसूत्रकारों ने अनेक गणितीय उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया है।

पदं तिर्यङ्मानी, त्रिपदा पार्श्वमानी
तस्याक्ष्णया रज्जुर्दशकरणी।
द्विपदा तिर्यङ्मानी, षट्पदा पार्श्वमानी,
तस्याक्ष्णया रज्जुः चत्वारिंशत् करणी॥

शुल्बसूत्रकारों के आशय को स्पष्ट करते हुए आर्यभट्ट कहते हैं कि समकोण त्रिभुज में भुजा (Base) के वर्ग और कोटि (Perpendicular) के वर्ग के बराबर होगा। इस प्रकार लम्बाई+चौड़ाई का वर्ग = कर्ण का वर्ग।

यश्चैव भुजावर्गः, कोटीवर्गः कर्णवर्गश्च सः॥

(आर्यभटीय, गणितपाद, १७)

पैथागोरस का प्रमेय यह है- "That the square on the hypotenuse of a right angled triangle is equal to the sum of the squares on the other two sides."

यहाँ से अनेक शिल्पों और कलाओं ने जन्म लिया। यजुर्वेद में यज्ञ में विभिन्न शिल्पियों को आमन्त्रित करने का निर्देश है। इनमें नृत्त के सूत, गीत के लिये शैलूष बुलाये जाते थे तो यज्ञ में आवश्यक अन्य निर्माणों या कार्यों के लिये कारि (शिल्पकार), रथकार तक्षक (बढ़ई), कौलाल (कुम्हार), कर्मार (मिस्त्री), मणिकार (जौहरी),

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वप (बीज बोने वाला), इषुकार (बाण बनाने वाला), धनुष्कार (धनुष बनाने वाला), ज्याकार (धनुष की ताँत बनाने वाला), रज्जुसर्ज (रस्सी बनाने वाला), मृगयु (मृगों का जानकार), श्वनिन् (कुत्तों का जानकार), पौजिष्ठ (मछुआरा), विदलकारी (बाँस चीरने वाली स्त्री), कंटकीकारी (काँटों से काम करने वाली), पेशस्कारी (कढ़ाई करने वाली), सुराकार (शराब बनाने वाला), दार्वाहार (लकड़हारा), पेशितृ (नक्काशी करने वाला मिस्त्री), वासःपल्पूली (धोबिन), रजयित्रा (रंगरेजिन), अयस्ताप (लोहा गलाने वाला), आंजनीकारी (अंजन बनाने वाली), कोशकारी (म्यान बनाने वाली), अजिनसंघ (खाल साफ करने या पकाने वाला), चर्म्न (चमड़े को नरम बनाने वाला), हिरण्यकार (सुनार) तथा प्रच्छिद (महीन टुकड़े करने वाला) आदि के साथ अनेक प्रकार के विभिन्न काम-धन्धों में लगे कामगारों या व्यवसायियों का उल्लेख है।

यज्ञ के अनुष्ठान से ही वास्तु और शिल्प की नाना प्रविधियों का विकास हुआ। अग्निशाला और वेदि की रचना में वास्तु और ज्यामिति के सिद्धान्तों का प्रयोग अनिवार्य था। ऋग्वेद में सदस् मकान के बाहरी कमरे के लिये आया है। सदस् का मूल अर्थ वेदी का एक भाग है (सदो वेद्या एकदेशः)। इसमें बैठने वाले लोग सदस्य हैं। एक आदर्श और सुन्दर घर की परिकल्पना भी याज्ञिक अवधारणा से अनुषक्त होकर ही जन्मीं। इसी परम्परा में ऋग्वेद में कहा गया है–

इन्द्रो विधातु शरणं विवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दियच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च याता दिद्युमेभ्यः॥ (६.१६.९)

अथर्ववेद आवश्यकता के अनुसार दो कमरों से लेकर दस कमरों तक के मकान बनाने का निर्देश करता है– या द्विपक्षा, चतुष्पक्षा, अष्टपक्षां दशपक्षां शालाम् (अथर्व. ९.३.२१)। फिर भी आदर्श घर में निम्नलिखित कमरे अवश्य होना चाहिये–

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।
सदो देवानामसि देवि शाले॥ (वही, ७.८३.१)

यहाँ देवसदन का अर्थ कुछ टीकाकारों ने अतिथिकक्ष किया है।

इसी प्रसंग में प्रतिमित या उपमित शब्दों का प्रयोग मकान के नक्शे के अनुसार बनाने और नाप करने के लिये आया है। आहुति देने के लिये अनेक प्रकार के पात्रों की आवश्यकता थी। यजुर्वेद कहता है– स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे। (यजु. १८.२१) इसमें वायव्य क्या है, यह अनुसन्धेय है। ग्रावन् बट्टा है और अधिषवण सिल। द्रोण बाल्टी के आकार का पात्र है। उससे बड़ा पात्र आहाव है। यह टब के आकार का होता होगा और इसमें पशुओं को पानी पिलाने के लिये आहाव का उपयोग होता था। (ऋग्वेद १०.१०.५) कटाह में पकते अन्न को हिलाने के लिये आयवन का प्रयोग होता था तो परोसन के लिये दर्वी का। उड़ेलने का काम में आने वाला प्याला उपसेचनी है। चलनी को तितउ कहा गया है, इसके छिद्रों को तुन्र। मूसल और उलूखल तथा शूर्प का भी उल्लेख हुआ है (अथर्व. ११.३.३-४)।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कवि कहता है– कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना (९.११२.३)। अर्थात् मैं कारु हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं और मेरी माता उपलप्रक्षिणी हैं। यहाँ कारु का अर्थ शिल्पी है। उपलप्रक्षिणी का अर्थ यास्क ने सक्तु बनाने वाली किया है। उपलप्रक्षिणी का शाब्दिक अर्थ होगा– उपल (पत्थर या बालू) पर प्रक्षण या प्रेक्षपण करने वाली। आशय यह लगता है कि सत्तू बनाने के लिये अनाज को गर्म बालू पर भूँजने वाली स्त्री उपलप्रक्षिणी है।

हल, फाल, कुद्दाल, लांगल आदि के साथ कताई और कपड़ा बुनने की कला का प्रथम आविष्कार भी विश्व में वैदिक मनीषियों ने ही किया ऐसा प्रतीत होता है। कपड़ा बुनने के लिये कहा है– तन्तुं तनुष्य (ऋ.१.१४२.१४) तथा नव्यं नव्यं तन्तुमातन्वसे (१.१५९.४)। कपड़ा बुनने वाली को वय्या कहा गया है– उषानक्ता वय्येव रण्विते,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तन्तुं ततं संवयन्ती समीची (२.३.६)। कपड़ा बुनने वाली के पूरके शिल्प का रूपक बनाकर विश्वज्ञ वैदिक ऋषि ने की है–

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकतर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते।
पुनाँ एनं तनुत उत् कृणत्ति पुमान् वि तत्ने अधि नाके अस्मिन्।
इमे मयूखा उपसेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे॥

(ऋ. १०.१३०.१-२)

सृष्टि के यज्ञ में सभी दिशाओं में तन्तुओं का ताना-बाना विस्तारित है। १०१ देव बुनने का कार्य कर रहे हैं। अनेक वृद्ध पितर इस काम में हाथ बँटा रहे हैं और वे करघे के निकट बैठे हुए निर्देश देते जा रहे हैं– प्रवय, अपवय अर्थात् आगे बुनो, पीछे बुनो। एक पुरुष धागे को कभी तानता है और कभी लपेटता है, वह त्रसर (shuttles) को कभी आगे फेंकता है, कभी पीछे।

वस्त्र सम्बन्धी समृद्ध पदावली वस्त्रविज्ञान की समुन्नत स्थिति का संकेत करती है। सूती वस्त्र के लिये वासस्, रेशमी के लिये तार्प्य, ऊनी के लिये उर्णायु शब्द ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में प्रयुक्त हैं। ओढ़ने के काम आने वाली हल्की चादर पर्याणहन है। नीवि अन्तर्वस्त्र है। अधिवास या उपवासन शरीर के ऊपरी भाग में पहने जाने वाले चोगे जैसे वस्त्र हैं। शरीर से चिपके हुए कुर्ते जैसे वस्त्र के लिये प्रतिधि और अत्क ये दो शब्द हैं। द्रापि बड़ा चोगा है। इस पर सोने का काम होने पर इसे हिरण्यद्रापि कहा जाता था। बेलबूटे के काम वाले वस्त्र को पेशस् कहा गया है। सोने के तार के काम वाले वस्त्रों को हिरण्यपेशस्।

यजुर्वेद के एक मन्त्र (३०.१४) में अयस्ताप (लोहे को तपा कर पिघलाने वाले यन्त्र) का उल्लेख है। अथर्ववेद (५.२८.१) में लोने के साथ सोना और चाँदी को भी पिघलाने का वर्णन है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक काल में गुरुकुलों में वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अथर्ववेद, गोपथ-ब्राह्मण और छान्दोग्यउपनिषद् में गुरुकुल या आश्रम में पढ़ायी जाने वाली विद्याओं का विवरण दिया गया है। छान्दोग्य-उपनिषद् के अनुसार ब्रह्मचारियों के लिये अध्येतव्य विषय ये थे– चार वेद, इतिहास, पुराण, वेदाङ्ग, पितृविद्या, राशिविद्या या गणित, दैवविद्या या वर्षाविज्ञान, निधिविद्या (खनिजशास्त्र Mineralology), वाकोवाक्य, एकायन (नीतिशास्त्र), देवविद्या (देवशास्त्र), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या (जन्तुशास्त्र), क्षत्रविद्या (शस्त्रविद्या), नक्षत्रविद्या (Astronomy), सर्पविद्या (Toxicology) तथा देवजनविद्या या गन्धर्वविद्या (संगीत)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेदकालीन प्रौद्योगिकी पक्ष

– आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी

ज्ञान जीवधारियों की पहचान है। मानवेतर में यह सहजात होता है, पर मानव अर्जित भी करता है। साथ ही अपने अर्जन में असन्दिग्ध होना चाहता है। प्रमा या ज्ञान विभिन्न प्रमाणों से प्राप्त होता है, पर सुनकर या अनुमान से हम जो ज्ञान अर्जित करते हैं– उस पर हम उस तरह आश्वस्त, विश्वस्त और असन्दिग्ध नहीं होते, जितना प्रत्यक्ष से होते हैं। विवेकानन्द ने परमहंसदेव से कहा था– "आप ईश्वर-ईश्वर करते और कहते हैं, पर क्या ईश्वर को हमें दिखा सकते हैं?" प्रत्यक्ष दृष्ट पर जो मति बनती है, उसका तर्क से अपनयन निपिद्ध है और उसका कारण यह है कि उसकी प्रतिष्ठा भी नहीं है। जो स्वयम् अप्रतिष्ठ है, वह दूसरे को क्या प्रतिष्ठित करेगा? अतः निस्सन्दि्धता को पाने के लिये जो भूमि बनती है, वह अपरोक्षानुभूति या प्रत्यक्षानुभूति की ही है। प्रत्याक्षानुभूति के जो उपकरण हैं, बाह्य और अन्तःकरण, वे ही कहाँ निर्दृष्ट हैं। यदि वे निर्मल हो जायें, आविद्यिक मल से रहित हो जायें, तब जो प्रत्यक्ष होगा, अपरोक्षानुभव होगा, वह असन्दिग्ध होगा, यह अनुभव अपरोक्ष नहीं, अपितु साक्षात् अपरोक्षानुभव होगा, जो परासत्ता का लक्षण है। श्रुति कहती है– "यत् साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म"। इसीलिये मनीषियों की मान्यता है कि केवल आत्मा के ही सम्बन्ध में नहीं, सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारे श्रवण, मनन व निदिध्यासन जब तक दर्शन या साक्षात्कार तक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर्यवासित नहीं होते, तब तक संशय से हमारा छुटकारा नहीं है। विज्ञान के समीप भी हम इसीलिये नत मस्तक होते हैं कि उसने भी हमें अपरोक्ष ज्ञान देने का आयोजन किया है– Direct experiment based on observation and experiment. विज्ञान में वह ज्ञान विज्ञान माना ही नहीं जाता, जिसका सत्यापन किसी स्तर पर ऐन्द्रिय प्रत्याक्षानुभूति से न हो जाये, अर्थात् उसका भी सारा उपक्रम प्रतिष्ठित तभी माना जाता है, जब प्रत्यक्ष से प्रमाणित हो जाता है। हाँ, यह प्रत्यक्ष साक्षात् प्रत्यक्ष नहीं है। अतः उसकी मान्यताएँ संशोधित होती रहती हैं। संशोधन की यह प्रक्रिया 'साक्षात् अपरोक्षीकार' से ही सम्भव है। इसके पूर्व के हमारे सारे ज्ञान सांकर्यग्रस्त हैं। वैसे विज्ञान भी परीक्षा द्वारा अपरोक्ष ज्ञान का ही संकल्पी है, पर वह टुकड़ों-टुकड़ों में कर रहा है– 'येन ज्ञातेन सर्व विज्ञानं भवति' की प्रक्रिया उसकी अभी तो नहीं है। कतिपय सनातन नियमों का पता उसे अवश्य लग गया है, जिसका उपयोग वह प्रौद्योगिकी में कर सका है।

असन्दिग्ध प्रमापर्यवसायी साक्षात् अपरोक्षानुभूति ब्रह्म का ही लक्षण है और वेद का भी। वेद शब्द जिस विद् धातु से बना है, वह अदादिगण के ज्ञानार्थक विद्, दिवादिगण के सत्तार्थक विद्, तुदादिगण के लाभार्थक विद् तथा रुधादिगण के विचाराणार्थक विद् से ही है। इससे यत् प्रत्यय लगाकर 'वेद' शब्द की निष्पत्ति करते हैं। विचारण ज्ञान ही है, अतः कुल मिलाकर सत्ता, आनन्दपर्यवसायी लाभ एवं ज्ञान ही उसका लक्षण है। ब्रह्म और वेद, दोनों का लक्षण या स्वरूप एक ही है। स्वरूप लक्षण ही नहीं, तटस्थ लक्षण भी दोनों के एक हैं। सत्ता में आना उत्पत्ति ही है। ज्ञान जीवन का लक्षण है। स्थिति जीवित की ही होती है– मतलब ज्ञान से स्थिति भी उपलक्षित है और लाभ या प्राप्ति सामान्य प्राप्तिपरक होने पर भी कारणात्मता प्राप्ति रूप लय को लक्षित करती है। इस तरह उत्पत्ति, स्थिति, लय की हेतुरूपता ही ब्रह्म का ही तटस्थ लक्षण है। जिस प्रकार ब्रह्म को नामरूपात्मक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जगत् का उपादान माना जाता है, उसी प्रकार वेद को भी। मनु कहते हैं –

समेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।। १-२

'श्रुति' से मत समझिये कि वह श्रावण या सुना हुआ है। आचार्य शंकर ने स्पष्ट कहा है– 'प्रत्यक्षं हि श्रुतिः 'प्रामाण्यं प्रत्यनपेक्षत्वात्' पुनः अन्यत्र भी– 'वेदस्य हि निरपेक्षं स्वार्थे प्रामाण्यं रवेरिव रूप विषये।' इस प्रकार एक तरफ से वेद ज्ञानमय है।

दूसरी तरफ से मनीषियों ने उसे 'वाक्' कहा है। शब्दाशि विशेष तो सब कहते ही हैं। यह बात अलग है कि शब्द के स्वरूप के विषय में लोगों की धारणाएँ पृथक्-पृथक् हैं। कोई अनित्य, कोई नित्य और कोई आहंकारिक मानता है। शतपथब्राह्मण में पुरश्चरणश्रुति है– "वागर्चश्च सामानि, मन एव मजूषिं।" यहाँ वाक् को ही ऋक् और साम कहा गया है। मंत्र-ब्राह्मणात्मक शब्द या ग्रन्थ की अपेक्षा यही वेद का सूक्ष्मतर रूप है। कहा है–

यदि वै प्रजापतेः परमास्ति, वागेव तत्। (शतपथ, ५.१, ३-११)

अथवा

यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्। ऋग्वेद, १०.११४, २

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कहा है–

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे, वाचं गन्धर्वः पशवो मनुष्याः।
वाचीमां विश्वाभुवनानयार्पिता सा नो हवं जुष्तामिन्द्रपत्नी।।

श्रुतियों में यही वाक् सबका कारण कही गयी है। निष्कर्ष यह है कि संसार में तीन तत्त्व उपलब्ध हैं– ज्ञान, क्रिया, और अर्थ। इनके अनुरूप तीन कारण हैं– मन, प्राण और वाक्। ज्ञान का मूल मन,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क्रिया का प्राण तथा अर्थ का वाक् है। यहाँ वाक् मन और प्राण की अपेक्षा स्थूल होने के कारण अनश्वर है। कहा है–

अवाञ्चति मनः, प्राणश्चानु आविर्भवति– इति अवाक्। फिर अवगाह का वगाह या अपिधान का पिधान जैसे हो गया, वैसे ही अवाक् का वाक्। वाक् इन्द्र या प्राण की सहचारिणी होने के कारण इन्द्रपत्नी कही गयी है। यही वाक् आगमों में नाद है। अव्याकृत ब्रह्म का मन, प्राण तथा वाक्रूप विभाग किसी प्रयत्न से नहीं हुआ है। कारण, मायावृत्तिरूप यत्न का प्रादुर्भाव बाद में हुआ। इस प्रकार इस व्याकरण का अभिधान निःश्वसितरूप में हुआ है। इसी सूक्ष्मतर वेद-रूप वाक् को लक्ष्य कर उसे अपौरुषेय, ब्रह्मनिःश्वसित तथा ब्रह्मरूप आर्यों के बीच कहा गया है। वैयाकरण इसी को स्फोट कहते हैं। यही सर्वत्र प्रसृत वाक् जब केन्द्र में प्रतिष्ठित होती है, तब आगम उसे बिन्दु कहता है। यही वाक् सबकी प्रकाशिका है। यही मूर्तिजनक है–

ऋग्भ्यो जातां सर्वशोमूर्तिमाहुः।

गतिरूप में प्राण तथा तेजरूप से मन कहा गया है। इस प्रकार जगत् का मूल मन, प्राण और वाक् की वेदरूपता श्रुतिप्रतिपादित है। इनमें से एक दूसरे से सर्वथा अवियुक्त हैं। कहीं-कहीं इन्हें समुदितरूप से प्राण भी कहा गया है। जैसे–

उक्थं यजुः साम सर्वं प्राण एवेति।

यहाँ उक्थ ऋक् है। यजुष्ट्व गतिस्थितिशील है। यही मूलतत्त्व है। वैज्ञानिक भी इलेक्ट्रान और प्रोटॉन् को गति स्थितिशील मानते हैं।

इन दोनों पक्षों में कोई विरोध नहीं है। परावाक् परब्रोधा स्वरूप ही है। परासत्ता की एक अचञ्चल स्थिति है। यह विश्वोत्त्रीर्णदशा है। शब्द वहीं होता है, जहाँ चाञ्चल्य स्पन्दन है। श्रुति उसे एजनात्मा भी कहती है और अनेजात्मा भी। अनेजनात्मा विश्वातीत स्थिति है, एजनात्मा विश्वात्मक। पहला शब्दातीत अशब्दात्मक, दूसरा पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शब्दात्मक। इसे सुनने का कोई कान नहीं है। इसके बाद जो चाञ्चल्य होता है, वह शब्दतन्मात्र है। वह निरतिशय भाव से सुना जाता है, यह प्राजापत्य कर्ण है। उसके बाद का शब्द संकीर्ण किन्तु सूक्ष्म होता है। वह मंत्र या योगज शक्ति से सुना जाता है। इसकी अपेक्षा संकीर्ण शब्द स्थूल है, वह भौतिक कर्णगोचर है। निरतिशय भाव से प्राजापत्य कर्ण से श्रुत तन्मात्र शब्द या स्पन्दविशेप ही Constituting forces है। यह पदार्थमात्र का उपादान होता है, जिसमें उसके सुनने का निरतिशय सामर्थ्य में आ जाता है, वही प्रजापति बन जाता है। उममें मब प्रकार की प्रौद्योगिकी के निर्माण की क्षमता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऋग्वेद में आकाश-रथ

– डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

पक्षियों के समान आकाश-यात्रा की कामना आदिम-ग्रन्थ ऋग्वेद में भी प्राप्त होती है। अश्विनीकुमारों के सन्दर्भ में ऐसे रथ या रथों की चर्चा है, जो पक्षियों द्वारा चलित रहे (ऋग्वेद, १.४६.३)।

हे अश्विनी भाइयों, आपका रथ जब पक्षियों के समान आकाश में उड़ता है, तब आपके घोड़े अन्तरिक्ष में जाते हैं।

आपके रथ के शीघ्रगामी पक्षी आपको इधर ले आवें (ऋग्वेद १.११८.३)। अश्विनीकुमारों के अन्तरिक्ष में उड़ने वाले (अन्तरिक्ष प्रद्भिः) और जल में संचरित (अपोदकाभिः) विमानों से जुड़ा तुग्र राजा के पुत्र भुज्यु को बचाया (ऋग्वेद, १.११६.४)।

तीन दिन तक आकाश में निरन्तर उड़ने वाले रथ की परिकल्पना निश्चय ही विशिष्ट तकनीक की अपेक्षा रखती है। आज विभिन्न ग्रहों के लिये प्रेषित रॉकेट में ही वह क्षमता और तकनीक है, जो बिना रुके सतत अन्तरिक्ष में संचरित होते रहते हैं।

वहाँ ४.३६.१ ऋभुओं के तीन पहियों के रथ की चर्चा है, जो (आज के वायुयानों के समान) आकाश और पृथ्वी पर चल सकता है।[१]

---

१. The Cultural Heritage of India, Vol. V, p. 348

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऋग्वेद में अश्विनीकुमार के वायुमानों की चर्चा अनेक बार हुई है (ऋग्वेद, १.११७.१४, १.११६.५, १.११९.४, ६.६२.६, ७.६९.७)।

रामायण के पुष्पक विमान, पुराणों के त्रिपुर के अतिरिक्त महाभारत, कथासरितसागर, बौद्ध तथा जैन साहित्य में भी वायुयानों के स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं। कथासरित्सागर से वायुयानों की संचालन-प्रक्रिया का भी कुछ परिचय मिल जाता है। शिल्प-संहिता नामक प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार पुष्पक विमान वाष्प की सहायता से चलता था। राजा भोज के समरांगण-सूत्रधार के अनुसार विमान पारा गरम होने पर उड़ता था। ऐसे उड़ने वाले तथा उतर कर पृथ्वी पर भी चलने वाले विमानों की चर्चा कालिदास के साहित्य में भी अनेकशः प्राप्त होती है। पुष्पकविमान अयोध्या से दूर आकाश से उतरकर फिर रथ के समान चलता हुआ नगर तक पहुँचता है (रघुवंश, १४)।

महर्षि भारद्वाज का 'यंत्रसर्वस्व' प्राचीन सूत्रग्रन्थ है। उसके चालीसवें अधिकरण में एक वैमानिक प्रकरण है, जिसमें ५०० सूत्र हैं। इसमें विमानों के निर्माण, प्रकार, आकार आदि की विस्तृत जानकारी दी गयी है। इसकी बोधान्नदवृत्ति सुविस्तृत है। इस ग्रन्थ के विभिन्न अधिकरणों में यन्त्र, मार्ग, आवर्त, अंग, वस्त्र, आहार, लोह, लोहशुद्धि, ऊष्मप, मूष, कुण्डभस्त्रा, दर्पण, शक्ति, यन्त्र, जाति, शकुन के साथ ही शकुन, सुन्दर, रुक्म तथा त्रिपुर विमानों की भी चर्चा है।

बोधानन्दवृत्ति में विमानशास्त्र के ज्ञाता और ग्रन्थकार नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि, आदि बताये गये, जिनके विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानबिन्दु, खेटयानप्रदीपिका, व्योमयानार्कप्रकाश आदि शास्त्र थे। भारद्वाज ने इनके ग्रन्थों का अपने ग्रन्थ वैमानिकप्रकरण में आधार लिया है।[१]

तदनुसार विमान उसे कहते हैं, जो पृथ्वी, जल और अन्तरिक्ष में पृथ्वी के समान वेग से स्वयं जाने में समर्थ हो। देश-देशान्तर में, द्वीप

---

१. भारद्वाजकृत वैमानिक प्रकरण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से द्वीपों तक, लोक से लोकान्तर में जो आकाश-मार्ग से जाने में समर्थ हो, वह विमान कहलता है।

नारायण – **पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतस्स्वयम्।**
यस्समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

विश्वम्भर – **देशाद्देशान्तरं तद्वत् द्वीपाद् द्वीपान्तरं तथा।**
लोकल्लोकान्तरं चापि योम्बरे गन्तुमर्हति।
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदावरैः॥

(वैमानिक प्रकरण पृष्ठ ३, ४)

इस ग्रन्थ में अग्निमित्र के पट-सम्बन्धी ग्रन्थ का भी संकेत मिलता है, जिसमें बताया गया है कि विमानचालक ऋतुधर्मानुसार कैसे कवच या सुरक्षा-वस्त्र पहनें।

अग्निमित्रोक्तविधिना पटजात्युनसारतः।
ऋतुधर्मानुसारेण कवचादीन्प्रकल्पयेत्॥ पृ. १६

विमान में लगने वाले दर्पण या काँच आठ प्रकार के होते हैं। उनमें से एक अग्निमित्र भी कहलाता था। यह अग्निसिद्ध (fire proof) होता था। अग्निमित्र नाम आते ही शुंगराजा की याद आ जाती है।

दक्षिण अमेरिका के कोलम्बिया में इंका, अजेट और मय सभ्यता के बीच स्पेनी लोगों का प्राप्त सेवा इंच लम्बे विमानाकार वस्तु का निर्माण लगभग एक हजार वर्ष पूर्व शुद्ध स्वर्ण से हुआ था। न्यूयार्क के एय़रोनाटिकल इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों को इस वस्तु के वायुयान की अनुकृति होने में सन्देह नहीं है।

७ जुलाई, १९७४ के धर्मयुग के प्रकाशित एक लेख के अनुसार १८९५ ई. में एक भारतीय वि. बापू तलपदे ने बम्बई के चौपाटी मैदान पर १५०० फीट की उड़ान एक ऐसे विमान से भरी थी, जिसे वैदिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मन्त्रों के आधार पर तैयार किया गया था।[1] जबकि राइट बन्धुओं ने आधुनिक विमान की पहली उड़ान १७ दिसम्बर १९०३ को भरी थी, अर्थात् चौपाटी के भारतीय तकनीक से निर्मित विमान की सफल उड़ान ८ वर्ष पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी।[2]

इससे प्रतीत होता है कि वैदिक काल के जो विमान सम्बन्धी सूत्र प्राप्त होते हैं, परवर्ती काल में उस तकनीक सतत और पर्याप्त कार्य हुआ। निश्चय ही ऐसी तकनीक की सफलता उसके प्रयोग पर ही निर्भर है। ऐसे सफल और विचित्र प्रयोगों के उदाहरणों से प्राचीन साहित्य सम्पन्न है।

---

१. नवभारत टाईम्स, २८-०७-१९७५

२. पाञ्चजन्य, २४-०१-१९६६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यज्ञतन्त्र और शुल्बसूत्रों की ज्यामिति

– गुणाकर मुळे

हमारे देश के प्राचीन वाङ्मय में वेद आद्यस्थानं में हैं। वेद चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। बाद में वेदों की शाखाएँ (संहिताएँ) निकलीं। फिर ब्राह्मण ग्रंथ लिखे गए। वेदों के मन्त्रों का अर्थ, याज्ञिक क्रिया करते समय किसी मन्त्र को क्यों कहना चाहिए, किस तरह कहना चाहिए, उस समय की जानेवाली विशिष्ट क्रियाओं की सूचना और यज्ञयाग की स्तुति आदि की बातें ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित हैं। वेदों की प्रत्येक शाखा के ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण के अन्त में या उनसे पृथक् आरण्यक हैं। इनमें भी यज्ञ विषयक जानकारी है।

कालान्तर में यज्ञतन्त्र इतना विशाल और जटिल हो गया कि उसे याद रखने में कठिनाई होने लगी। याग संबन्धी सारी जानकारी को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने और स्मरण रखने के प्रयोजन से सूत्र साहित्य का सृजन हुआ। सूत्र का अर्थ– डोरी या धागा। बाद में इसका अर्थ हुआ– लघु नियम अथवा सूचना, जिसे कम-से-कम शब्दों में क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया हो। यह सूत्र-पद्धति प्राचीनभारतीय वाङ्मय का एक वैशिष्ट्य है।

वेदों के अंगों के रूप में सूत्ररूप में जो महत्वपूर्ण साहित्य रचा गया उसे वेदाङ्ग कहते हैं। प्राचीन भारतीय विज्ञान के इतिहास की दृष्टि से इस वेदाङ्ग साहित्य का बड़ा महत्त्व है। वेदाङ्ग छः हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कल्प का अर्थ है– नियम अथवा सूचना। कल्पसूत्रों का संबन्ध प्रमुखतः ब्राह्मण ग्रन्थों के यज्ञतन्त्र से है और इनके चार भाग हैं– श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र। श्रौतसूत्रों में यज्ञसंबन्धी जानकारी है। गृह्यसूत्रों में संस्कार वर्णित हैं और धर्मसूत्रों में नीति। शुल्बसूत्रों का समावेदश प्रायः श्रौतसूत्रों के अन्तर्गत ही होता है; इन्हें एक तरह से श्रौतसूत्रों का परिशिष्ट माना जाता है। वेदी, चिति मण्डप आदि तैयार करने के काम यजुर्वेदी ब्राह्मणों का है, इसलिए शुल्बसूत्रों का समावेश प्रायः श्रौतसूत्रों के अन्तर्गत ही होता है; इन्हें एक तरह से श्रौतसूत्रों का परिशिष्ट माना जाता है। वेदी, चिति, मण्डप आदि तैयार करने के काम यजुर्वेदी ब्राह्मणों का है। इसलिए शुल्बसूत्र केवल यजुर्वेदान्तर्गत कल्पसूत्रों में ही उपलब्ध होते हैं।

शुल्बसूत्रों में वर्णित विषय वस्तु प्रस्तुत है।

शुल्ब का अर्थ है – डोरी या रस्सी। शुल्व् धातु का अर्थ है – मापना या नापना। डोरी की सहायता से वेदी, अग्निचिति, मण्डप, आदि को नापने की सूत्ररूप जानकारी जिन पुस्तकों में दी गई है वे शुल्बसूत्र कहलाते हैं। अब तक आठ शुल्बसूत्र उपलब्ध हुए हैं। इनमें कृष्णयजुर्वेदान्तर्गत ७ शुल्बसूत्र हैं – बौधायन, आपस्तंब, सत्याषाढ, वाधुल, मानव, मैत्रायणी और वराह। शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत आठवां शुल्बसूत्र है – कात्यायन। इन आठ शुल्बसूत्रों में बौधायन, मानव और कात्यायन शुल्वसूत्र महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी बौधायन शुल्बसूत्र सबसे बड़ा, सबसे प्राचीन और व्यवस्थित रूप में लिखा गया है।

शुल्बसूत्रों में यज्ञकर्म के लिए आवश्यक विभिन्न आकार-प्रकार की वेदियों तथा अग्निचितियों के माप, उनका आयोजन, ईंटों के आकार एवं उनकी रचना सम्बन्धी जानकारी दी गई है। इसका संबन्ध क्षेत्रमिति यानी ज्यामिति से है। शुल्बसूत्रों में ज्यामितीय कृत्यों और उन कृत्यों की पुष्टि करने वाले नियम दिए गए हैं।

वैदिक काल में देवताओं के मंदिर नहीं होते थे, यज्ञ होते थे। यज्ञ मुख्यतः दो प्रकार के होते थे – नित्य या अनिवार्य और काम्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

या वैकल्पिक। यज्ञ निर्धारित आकार की वेदियों पर ही किए जाते थे। तरह-तरह की वेदियाँ बताई गई हैं। 'अग्नि' शब्द का मूल अर्थ आग था, परन्तु बाद में यह वेदी और चिति का द्योतक बन गया। नित्य यज्ञ के लिए तीन अग्नियाँ अभिप्रेत थीं -- गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण। ये प्रतिदिन के यज्ञ के लिए होती थीं। ये अग्नियाँ या वेदियाँ निश्चित आकार की होती थीं। गार्हपत्य अग्नि को वर्तुल बताया गया है, आहवनीय को वर्गाकार और दक्षिण को अर्धवर्तुल। परन्तु इन तीनों ही अग्नियों का क्षेत्रफल समान यानी एक वर्ग व्याम (१ व्याम = ९६ अंगुल) होना चाहिए। इसके लिए ज्यामिति की दृष्टि से जमीन पर वृत्त या अर्धवृत्त या वर्ग की शुद्ध आकृतियाँ बनाने की विधियाँ मालूम होनी चाहिए। साथ ही, वर्ग को वृत्त या अर्धवृत्त अथवा वृत्त को वर्ग में बदलने के लिए वर्ग की भुजा और वृत्त की त्रिज्या के परस्पर-संबन्ध की जानकारी शुल्बसूत्रों में दी गई है। अतः शुल्बसूत्रों के अध्ययन से पता चल जाता है कि श्रौतसूत्रों की रचना के समय भारतीय पण्डितों को कितनी ज्यामिति ज्ञात थी।

शुल्बसूत्रों का समय

श्रौतसूत्र या शुल्बसूत्र कब लिखे गए? इस सम्बन्ध में पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानों ने अलग-अलग मत व्यक्त किए हैं। बौधायन शुल्बसूत्र को सबसे प्राचीन माना जाता है। उसके बाद क्रमशः मानव, आपस्तंब और कात्यायन शुल्बसूत्र आते हैं। काशीकर, काणे और रामगोपाल जैसे विद्वान् बौधायन का रचनाकाल ८०० ई. पू. और ४०० ई.पू. के मध्य मानते हैं। कात्यायन शुल्बसूत्र, पाश्चात्य विद्वान् कीथ और एगेलिंग के अनुसार, लगभग ३५० ई.पू. में लिखा गया। यह भी अनुमान लगाया गया है कि बौधायन, आपस्तंब, मानवशुल्बसूत्रकार और कात्यायन उत्तर भारतीय थे। सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र का दक्षिण भारत में अधिक प्रचार रहा है।

जो भी हो, बौधायन और आपस्तंब के समय को ५०० ई.पू. के आसपास रख सकते हैं। अन्य शब्दों में शुल्बसूत्रों में जो भारतीय ज्यामिति उपलब्ध है वह कम-से-कम ढाई हजार साल पुरानी तो है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही। लेकिन बौधायन और आपस्तंब ने यह दावा कदापि नहीं किया है कि वेदी-निर्माण के लिए जिस ज्यामिति का उपयोग वे कर रहे हैं उसके सिद्धान्तों या नियमों की खोज स्वयं उन्होंने की है। जब कभी वे किसी प्रस्थापना का वर्णन करते हैं, तो कहते हैं – इति अभ्युपदिशन्ति, इति विज्ञायते, इत्युक्तम् आदि। इससे पूर्व विद्वानों के कथन की पुष्टि होती है। ऐसा कहते समय वे तैत्तिरीय संहिता या तैत्तिरीय ब्राह्मण या उसके आरण्यक का उद्धरण भी प्रस्तुत करते हैं। गार्हपत्य जैसी अग्निवेदी का उल्लेख ऋग्वेद में भी है। इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण काल में भी शुल्बसूत्रों में वर्णित ज्यामिति का अस्तित्व था।

ज्यामिति के लिए भारतीय नाम

आज हिन्दी और कुछ अन्य भारतीयभाषाओं में प्रयुक्त होने वाला ज्यामिति शब्द यूनानी के 'ज्यॉमिट्री' शब्द से, न केवल ध्वनिसाम्य, अपितु अर्थसाम्य भी रखता है (ज्या = पृथ्वी और मिति= मापना)। मराठी में 'भूमिति' शब्द का प्रयोग होता है। 'रेखागणित' शब्द भी ज्यादा पुराना नहीं है। सवाई राजा जयसिंह द्वितीय के दरबारी ज्योतिषी पं. जगन्नाथ ने १७१८ ई. में यूक्लिड के मूलतत्त्वों का संस्कृत में अनुवाद किया तो उसे 'रेखागणित' का नाम दिया। पं. बापूदेव शास्त्री ने 'क्षेत्रमिति' शब्द चलाया। उसके पहले के भारतीय गणितज्ञों ने ज्यामिति के अर्थ में 'क्षेत्र', 'क्षेत्र-समास', 'क्षेत्र-व्यवहार' और 'क्षेत्र-गणित' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है।

ज्यामिति का प्राचीन भारतीय नाम 'शुल्ब' ही है। मानव और मैत्रायणी शुल्बसूत्रों में इसे 'शुल्ब-विज्ञान' कहा गया है। ज्यामितिज्ञ को 'शुल्बविद्' कहा जाता था। उस समय ज्यामिति को 'रज्जु' भी कहा जाता था। कात्यायन शुल्बसूत्र का पहला ही सूत्र है – रज्जुसमासं वक्ष्यामः (डोरी की सहायता से क्षेत्र के एकीकरण को बता रहा हूँ)। 'रज्जु' और 'शुल्ब' शब्द लगभग एक ही अर्थ के द्योतक हैं। 'रज्जु' शब्द 'रेखा' और 'फीता' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। पालि साहित्य में राजा के भूमि-सर्वेक्षक के लिए 'रज्जुक' और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'रज्जु-ग्राहक' शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'रज्जुक' शब्द का उल्लेख सम्राट अशोक के अभिलेखों में भी मिलता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में ज्यामितिज्ञ के लिए अन्य शब्द हैं – संख्याज्ञ, परिमाणज्ञ, सूत्रधार, सूत्रग्राही, शुल्ब-परिपृच्छज्ञ (शुल्ब की पड़ताल करने वाला) और समसूत्रनिरञ्चक (समान रस्सी फैलाने वाला)।

एक यूनानी उल्लेख के अनुसार प्राचीन मिस्र के ज्यामितिकार अथवा भूमि-सर्वेक्षक 'हार्पेडोनाप्टाई' कहलाते थे। इस शब्द का अर्थ है 'रस्सी फैलाने वाला'। स्पष्ट है कि 'हार्पेडोनाप्टाई' और समसूत्रनिरञ्चक' शब्द समानार्थक हैं। लेकिन इस शब्दसाम्य के आधार पर यह कहना ठीक नहीं होगा कि मिस्र ने ज्यामिति को भारतीयों से प्राप्त किया था। प्राचीन मिस्र में ज्यामिति की शुरुआत भूमि-मापन से हुई है। नील नदी में आने वाली बाढ़ के कारण समीपस्थ भूमि का बटवारा किसानों में नए सिरे से प्रति वर्ष करना पड़ता था और तदनुसार लगान निर्धारित करना होता था। भूमि-मापन के इसी प्रयास से प्राचीन मिस्र में क्षेत्रमिति का विकास हुआ। मंदिरों और पिरामिडों-जैसे भव्य स्मारकों के निर्माण ने भी वहाँ ज्यामिति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय ज्यामिति का विकसतिरूप सर्वप्रथम हमें शुल्बसूत्रों में ही देखने को मिलता है। शूल्बसूत्रों में तथाकथित 'पायथेगोर के प्रमेय' का व्यापक उपयोग देखने को मिलता है, /२ जैसी अपरिमेय संख्याओं के काफी शुद्ध मान लिए गए हैं। लेकिन शुल्बसूत्रों की ज्यामिति का संबन्ध यज्ञतन्त्र से है।

भारतीय ज्यामिति की शुरुआत

कोई भी विज्ञान मानव की भौतिक और बौद्धिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अस्तित्व में आता है, आसमान से नहीं टपकता। शुल्बसूत्रों के अनुसार वेदियों के निर्माण में पकाई हुई ईंटों का इस्तेमाल होता था और वे ईंटें विभिन्न आकार-प्रकार की होती थीं। राजगीर और बढ़ई को भी ज्यामिति की जरूरत पड़ती है। इन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोनों ही पेशों के शिल्पियों को सीधी रेखा और समकोण का सतत सामना करना पड़ता है। इसलिए भू-मापन से भी पहले भवन-निर्माण का ज्यामिति के उद्भव में प्रमुख योगदान रहा है। इस बात का समर्थन शुल्बसूत्रों के निर्देशों से भी होता है। कात्यायन शुल्बसूत्र में कहा गया है–

शास्त्रबुद्ध्या विभागज्ञः परशास्त्रकुतूहलः।
शिल्पिभ्यः स्थपतिभ्यश्च आददीत मतीः सदा।।

अर्थात्, शास्त्रीयबुद्धि से चलने वाले और ईंटों के पोटभेद को जानने वाले शुल्बविद को हमेशा शिल्पियों और स्थापतियों की सलाह लेते रहना चाहिए। यज्ञ-मण्डप बनाने के लिए बढ़इयों की और ईंटें बनवाकर उन्हें ठीक से रचने के लिए कुशल राजगीरों की जरूरत पड़ती थी।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि शुल्बसूत्रों की ज्यामिति ईंटें बनाने वालों, राजगीरों, बढ़इयों और अन्य कारीगरों तथा पुरोहितों के बीच सहयोग से अस्तित्व में आई है। ईंटों की जरूरत पहले मकान बनाने के लिए हुई। यज्ञवेदियों के निर्माण में इनका प्रयोग बाद में हुआ।[1]

वैदिक साहित्य में पकाई हुई ईंटों (इष्टिका) के उल्लेख तो मिलता है। वैदिक जन अधिकतर गाँवों में और साधारण-से घरों में रहते थे। उनके निर्माण में अधिकतर लकड़ी का प्रयोग होता था। इसीलिए उनके आवासों के पुरावशेष आज उपलब्ध नहीं हैं। दरअसल, मौर्यकाल तक पकाई हुई ईंटों का बहुत कम उपयोग हुआ है।

परन्तु सिन्धुसभ्यता के नगरावशेषों की बात निराली है। सिन्धुसभ्यता के नगर योजना के अनुसार बने हैं; उनकी सड़कें सीधी हैं और एक-दूसरे को समकोण में काटती हैं। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो,

---

१. दृष्टिका शब्द से ही स्पष्ट है कि ईंटों का प्रथम उपयोग यज्ञ के लिए हुआ। – (संपादक)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोथल और कालीबंगा जैसे सिन्धु नगरों में पकाई हुई ईंटों का बड़े पैमाने पर प्रयोग हुआ है। वहाँ आवें और भट्ठें भी मिले हैं। वहाँ ईंटें भी विभिन्न आकार-प्रकार की बनती थीं। गोलाकार कुँओं में जिन ईंटों का इस्तेमाल हुआ है वे फान के आकार की हैं। स्नानघर और नालियों के निर्माण में विशेष प्रकार की ईंटों का प्रयोग हुआ है। मकानों के कोने बनाने के लिए L के आकार की ईंटों का प्रयोग होता था।

इसलिए हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में ज्यामिति का प्रारम्भ वैदिक काल में हो गया था। जब हम तरह-तरह की वेदियों के निर्माण के लिए शुल्वबिदों को बाँस के शंकु और रस्सी (शुल्ब या रज्जु) का उपयोग करते हुए देखते हैं।

शुल्बसूत्रों की विषयवस्तु

शुल्बसूत्रों में किस तरह की जानकारी है, यह जानना उपयोगी होगा। बौधायन शुल्बसूत्र सर्व प्राचीन और सबसे विस्तृत है। यह अत्यन्त संक्षिप्त सूत्रशैली में रचा होने पर भी सर्वाधिक व्यवस्थित है। इसलिए हम प्रमुखतः इसी की विषयवस्तु पर एक दृष्टि डालेंगे। वस्तुतः इसमें तीन ही अध्याय हैं, परन्तु इसके सम्पादक और अंग्रेजी अनुवादक डॉ. थीबो ने इसे दस अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में लम्बाई के विभिन्न परिमाणों की सारणी, नित्याग्नियों के माप, उनके बीच के अन्तर और उनकी रचना की जानकारी है। साथ ही, विविध प्रकार के यज्ञों के लिए वेदियों तथा मण्डपों के माप और उनके आकार-विन्यास का वर्णन है। दूसरे अध्याय में प्रथम अग्निचिति के क्षेत्रफल, उसके लिए आवश्यक ईंटों की विशेषताएँ और उन्हें रचते समय पालन किये जाने वाले नियमों की जानकारी है। तीसरे अध्याय में श्येनचिति के माप, उसे बनाने के लिए आवश्यक ईंटों के माप, उनके आकार और परतों में की जाने वाली उनकी रचना की जानकारी है। चौथे अध्याय में श्येन (बाज) पक्षी के शरीर, सिर, पंख और पूँछ के अनुसार बनायी जाने वाली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अग्निचिति की रचना के बारे में विस्तृत सूचनाएँ है। साथ ही, कंक और अलज पक्षियों के आकार वाली वेदियों की रचना पद्धति के बारे में जानकारी है। उसी अध्याय में त्रिकोणाकृति प्रउग चिति और समचतुर्भुजाकृति उभयतः प्रउग चिति की रचना के नियम दिए गए हैं। आगे पाँचवें अध्याय में दो प्रकार की रथचक्र चितियों, छठे व सातवें अध्यायों में दो प्रकार की द्रोणचितियों और आठवें अध्याय में श्मशानचिति का वर्णन है। नौवें अध्याय और दसवें अध्याय के आरम्भ में कूर्मचिति का वर्णन है। दसवें अध्याय के शेष भाग में बताया गया है कि उपर्युक्त काम्य चितियों के लिए ईंटों की रचना करते समय किस तरह की गिली मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए।

मानवशुल्बसूत्र है तो प्राचीन, परन्तु इसकी रचना कुछ अटपटी-सी है। इसमें ज्यामितीय जानकारी अलग से न देकर प्रत्येक वेदी के साथ उसकी आवश्यकता के अनुसार प्रस्तुत की गई है। **आपस्तंबशुल्बसूत्र** काफी व्यवस्थितरूप से रचा गया है। इसके आरंभिक तीन खण्डों में ज्यामितीय जानकारी है। आगे के दो खण्डों में नित्याग्नियों की रचना का वर्णन है। सातवें अध्याय में ईंटों के आकार और उनकी रचना से संबंधित जानकारी है। आगे के खण्डों में श्येनचिति, प्रउगचिति, द्रोणचिति और श्मशानचिति का वर्णन है। साथ ही, अश्वमेधीय अग्नि के बारे में भी कुछ सूचनाएँ हैं। जैसे कि पहले बताया गया है, **कात्यायन शुल्बसूत्र** कुछ बाद में, ३५० ई. पू. के आसपास, रचा गया है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमें सूत्रकार ने नियमों को व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। दूसरी विशेषता यह है कि इसमें क्षेत्रफल जानने की एक से अधिक रीतियाँ दी गई हैं।

शुल्बसूत्रों में प्रस्तुत अग्नि, वेदी, अग्निचिति और मण्डप सम्बन्धी जानकारी

अग्नि : आज 'अग्नि' शब्द का अर्थ है आग। शुल्बसूत्रों में यह शब्द वेदी और चिति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रत्येक यज्ञ में ये तीन अग्नियाँ अवश्य होती हैं – गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण। ऋत्विजों के होमहवन के लिए वर्गाकार या वर्तुलाकार जो छोटी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेदियाँ बनाई जाती हैं उन्हें 'धिष्ण्या' कहते हैं। हर यज्ञ की अपनी जो विशिष्ट अग्नि होती है उसे वेदी कहते हैं।

गार्हपत्य अग्नि का स्थान प्राग्वंश मण्डप के पश्चिमी द्वार के पास होता है। यह वर्गाकार या वर्तुलाकार होती है। अग्नि वर्तुलकार हो तो उसका व्यास ९६ अंगुल होगा और वर्गाकार हो तो उसकी भुजा की लंबाई ९६ अंगुल होगी। आहवनीय अग्नि प्राग्वंश मण्डप के पूर्वी द्वार के पास होती हैं। इस वर्गाकार अग्नि की भुजा ९६ अंगुल लंबी होती है। दक्षिणाग्नि मण्डप के दक्षिण में होती है। इस अर्धवृत्ताकार अग्नि का क्षेत्रफल गार्हपत्यऽग्नि के बराबर ही होता है। मण्डप के उत्तर में कूड़ा-कचरा डालने के लिए जो वर्तुलाकार खड्डा होता है उसे **उत्कर:** कहते हैं। मराठी में प्रचलित 'उकरड़ा' शब्द इसी से बना है। प्राग्वंश मण्डप में इन तीनों अग्नियों को विशिष्ट अन्तर पर स्थापित किया जाता है। इनके बीच के अन्तर को निर्धारित करने के नियम शुल्बसूत्रों में दिए गए हैं।

वेदी के तीन प्रमुख प्रकार हैं – यजमान की वेदी प्राग्वंश मण्डप में होती है। दूसरी उत्तरवेदी यज्ञगृह के पूर्व में होती है। और, तीसरी है महावेदी। यजमान की वेदी यज्ञों के प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न आकार की होती है। जैसे, पशुबन्धयज्ञ की वेदी चारक्य यानी रथ के माप के अनुसार बनती है। पितृमेध यज्ञ की वेदी वर्गाकार होती है और उसके कोने मुख्य दिशाओं की ओर रहते हैं।

उत्तरवेदी के छह प्रकार हैं। अलग-अलग यज्ञों में अलग-अलग उत्तरवेदी का उपयोग होता है। सभी प्रकार की उत्तरवेदियाँ वर्गाकार होती हैं। अधिकतर यज्ञों में उत्तरवेदी ३६ X ३६ अंगुल की होती है। बड़ा घेरा महावेदी कहलाता है। इसकी आकृति एक समद्विबाहु समलम्ब के समान होती है। इसमें एक रेखा पूर्व से पश्चिम की ओर और दूसरी रेखा उत्तर से दक्षिण को जाती है। इनमें पूर्व-पश्चिम रेखा को प्राची या पृष्ठ्या (यानी पीठ) कहते हैं और उत्तर-दक्षिण रेखा को उदिची कहते हैं। महावेदी के पश्चिम में सदस् यानी सभास्थान होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कामनानुसार किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के यज्ञों में से प्रमुख वेदी पर हव्यकव्य किया जाता है उसे अग्निचिति कहते हैं। चिति शब्द 'चि' धातु से बना है, जिसका अर्थ है – रखना अथवा स्थापित करना। पकाई हुई ईंटें स्थापित करके जो रचना बनती है उसे 'चिति' कहते हैं।

तीन प्रमुख अग्निचितियाँ पक्षी के आकार कही हैं। ये हैं – श्येनचिति, कंकचिति, और अलगचिति। श्येन का अर्थ है – बाजपक्षी। कंक और अलग भी श्येन की जाति के ही पक्षी हैं। श्येन पक्षी आकाश में बहुत ऊँचाई तक पहुँचता है, इसलिए शुल्बसूत्रों में कहा गया है कि जिसे स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा है उसे श्येनचिति रचकर यज्ञ करना चाहिए (अथ वै भवति श्येनचित चिन्वीत स्वर्गकाम इति - बौ. शु. ३.१)

जैसा कि पहले बताया गया है, कामनानुसार यज्ञों के अनेक प्रकार हैं। इन्हें प्रापंचिक, नैमित्तिक, अहितकारक, राजनीतिक, कर्मकाण्डीय, तथा पारमार्थिक वर्गों में बाँटा जा सकता है। भाईबंदों का नाश करने के लिए प्रउग ओर उभयत: प्रउगचिति रचकर यज्ञ करने का निर्देश है (आ.शु. १२.१२)। ये चितियाँ क्रमश: त्रिकोणाकार और समभुज, चतुष्कोण के आकार की होती थीं। द्रोणचिति वर्गाकार अथवा वर्तुलाकार बताई गई है। भरपूर अन्नप्राप्ति के लिए द्रोणचिति रचने को बताया गया है (द्रोणचितं चिन्वीत अन्नकाम इति विज्ञायते - आ.शु. १३.६)।

जिसके भाईबृंद शत्रुवत् हैं उसे रथचक्रचिति यानी रथ के पहिए के आकार की चिति रचने को कहा गया है। श्मशानचिति चतुर्भुजाकार होती थी और ईंटों की रचना इस तरह की जाती थी कि वह सूचिस्तंभ छिन्नक की तरह दिखाई देती थी। पितृलोक में अपनी समृद्धि की कामना करने वाले श्मशानचिति रचते थे। कूर्मचिति कछुए के आकार की होती थी। ब्रह्मलोक पर जय प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले इस चिति को रचते थे। पुत्रप्राप्ति, बलप्राप्ति, अभिचारकृत्य,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पौरोहित्यप्राप्ति आदि के लिए भी विशिष्ट आकार-प्रकार की चितियों की रचना के निर्देश श्रौतसूत्रों में देखने को मिलते हैं।

चिति का एक और अनोखा प्रकार है – छन्दचिति। इसमें काम्य चितियों की रचना प्रत्यक्षतः ईंटों से नहीं की जाती। सिर्फ यह दिखाया जाता है कि मन्त्र बोलते हुए हाथ से यथास्थान ईंटें रखी जा रही हैं। यह प्रतीकात्मक चिति है।

ईंटों का निर्माण और उनकी रचना-पद्धति

अग्निचयन में विभिन्न आकार-प्रकार की ईंटों का प्रयोग होता था। शुल्बसूत्रों में इनको बनाने और इनकी रचना के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। निर्देश है कि मिट्टी के अलावा अन्य किसी द्रव्य की ईंटें नहीं बनानी चाहिए। प्रत्येक अग्निचिति के लिए किस आकार की और किस माप की ईंटें इस्तेमाल की जानी चाहिए इसकी स्पष्ट सूचना शुल्बसूत्रों में दी गई है। ईंटें बनाने के लिए लकड़ी के साँचे का उपयोग होता था। विभिन्न प्रकार की चितियों के लिए चतुष्कोण, पञ्चकोण, त्रिकोण, शूलपाद, हंसमुख आदि आकार की ईंटें बनती थीं। इनके निश्चय ही साँचे रहे होंगे।

गिली मिट्टी से ईंटें तैयार करने के बाद उन्हें सुखाया जाता था। तदनन्तर उन्हें पकाया जाता था। इस क्रिया में ईंटों के आकार थोड़े कम हो जाते हैं। इसलिए बताया गया है कि आरम्भ में ही उन्हें थोड़ा आकार देना चाहिए। मानव शुल्बसूत्र में बताया गया है कि पकाने पर ईंट उसके १/३० भाग बराबर कम हो जाती है।

ईंटें रचने का एक महत्त्वपूर्ण नियम बौधायन शुल्बसूत्र में दिया गया है, और उसका आज भी पालन होता है। वह नियम है – भेदान् वर्जयेत् (२.२२)। इसका अर्थ यह है कि ईंटों के बीच की चीर या लकीर एकसंध नहीं होनी चाहिए। श्येनचिति रचते समय इस नियम का पालन आवश्यक है, अन्यथा पक्षी के शरीराङ्ग सहज ही अलग-अलग हो जाएँगे। अग्निचिति में कौन-सी ईंट कहाँ रखनी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चाहिए, यह पहले से ही निश्चित रहता था। इसलिए ईंटों पर निशान बना दिए जाते थे।

ईंटें रचने के लिए गिली माटी (पुरीष) का इस्तेमाल होता था। ईंटों के थर रचते समय कहाँ कितनी माटी रखी जानी चाहिए, इसके बारे में भी शुल्बसूत्रों में हिदायते हैं। माटी ऐसी रखी जाए कि चिति का भीतरी भाग ऊँचा और किनारे का भाग नीचा रहे, तो उस पद्धति को 'समूह्य' कहा गया है। कछुए की पीठ ऊँची होती है, इसलिए कूर्मचिति को समूह्य पद्धति से बनाया जाता था। इसके विपरीत, किनारे की ओर अधिक माटी रखकर द्रोणचिति के मध्यभाग को गहरा बनाया जाता था।

शुल्बसूत्रों की ज्यामिति

चिति तैयार करने के लिए आवश्यक ज्यामितीय साधन

जमीन पर वेदी, अग्निचिति तथा मण्डप तैयार करने के प्रयोजन से शुल्बसूत्रों में ज्यामितीय नियमों का प्रतिपादन हुआ है। इसलिए जानना उपयोगी होगा कि इन्हें बनाने में किस तरह के उपकरण इस्तेमाल होते थे। वेदी, अग्निचिति और मण्डप का आकार डोरी (रज्जु, शुल्ब) और खूंटी (शंकु) की सहायता से तैयार किया जाता था। शण, कुश या मुंज से तीन लड़ियों वाली डोरी बनाई जाती थी। डोरी के दोनों सिरों पर गाँठें होती थीं। अलग-अलग प्रयोजन के लिए अलग-अलग लम्बाई की डोरियाँ होती थीं। श्येनचिति का विशेष महत्त्व था, इसलिए उसके आयोजन में विशेष प्रकार की डोरी का उपयोग होता था शंकु शायद बाँस या खैर की लकड़ी के बनाए जाते थे।

नियम था कि प्रत्येक चिति पूर्वाभिमुख होनी चाहिए। किसी भी चिति की रचना के पहले सर्वप्रथम 'प्राची' यानी आकृति के मध्यभाग से जाने वाली (सममिति अक्ष वाली) पूर्व-पश्चिम रेखा निश्चित करनी होती है। इतना ही नहीं, मण्डप भी पूर्वाभिमुख (प्राग्वंश) अथवा उत्तराभिमुख (उदग्वंश) बनाए जाते थे। इसलिए दिशाज्ञान की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
BVBSSMV

जानकारी अत्यावश्यक थी। दिन के समय शंकुछाया की सहायता से और रात के समय नक्षत्रों की सहायता से दिशा मालूम की जाती थी। सूर्य छह महीने उत्तरायण और छह महीने दक्षिणायन में रहता है, इसलिए सूर्योदय की दिशा बदलती रहती है। इसके लिए जो थोड़ा संशोधन आवश्यक है उसका शुल्बसूत्रकारों ने उल्लेख नहीं किया है। कृत्तिका, श्रवण व पुष्य नक्षत्र वैदिक काल में शायद पूर्व दिशा में उदित होते थे, इसलिए इनकी सहायता से पूर्व दिशा निश्चित की जाती थी। अब ये नक्षत्र पूर्व दिशा से हट गए हैं।

शुल्बसूत्रों में अंगुल को 'प्रमाण माप' माना गया है। लेकिन अंगुल से निश्चित लम्बाई व्यक्त नहीं होती। बताया गया है कि एक अंगुल लंबाई 'अणु' नामक धान्य के १४ दानों की अथवा तिल के ३४ दानों की मोटाई के बराबर होती है। हाथ की बीच की उंगली (मध्यमा) के सिरे से लेकर जमीन तक की ऊँचाई के 'पुरुष' माप मानकर उसे १२० अंगुलियों के बराबर बताया गया है। शुल्बसूत्रों में पद (१५ अंगुल), युग (८६ अंगुल), बाहु (३६ अंगुल), अरत्नि(२४ अंगुल), व्याम (५ अरत्नी) आदि और भी कई माप दिए गए हैं।

शुल्बसूत्र ज्यामिति की पुस्तकें नहीं हैं। उनमें केवल वेदी, अग्निचिति और मंडप की रचना के लिए आवश्यक ज्यामितीय नियमों की ही जानकारी दी गई है। शुल्बसूत्र यूक्लिड (३०० ई.पू.) की ज्यामिति की पुस्तक की तरह की रचनाएँ नहीं हैं। उनमें प्रमेय की उपपत्तियाँ नहीं हैं। लेकिन केवल इसी के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि शुल्बसूत्रकारों को उनके द्वारा प्रस्तुत नियमों अथवा सिद्धान्तों की उपपत्तियों की जानकारी नहीं थी। आगे भी आर्यभट्ट (४९९ ई.), ब्रह्मगुप्त (६२८ ई.) भास्कराचार्य (११५० ई.) आदि भारतीय गणितज्ञों ने उपपत्तियाँ नहीं दी हैं, केवल नियम दिए हैं।

शुल्बसूत्रों की अभिधारणाएँ

शुल्बसूत्रकारों ने ज्यामितीय कृतियों के लिए कुछ अभिधारणाएँ गृहीत मान ली थीं (वस्तुतः ये यूक्लिड की तरह की अभिधारणाएँ

BVBSSMV

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं हैं)। शुल्बसूत्रों की ये अभिधारणाएँ सरल रेखा, आयत, वर्ग और त्रिभुज के विभाजन से संबन्धित हैं। प्रमुख अभिधारणाएँ हैं –

१. दी हुई निश्चित लम्बाई की सरल रेखा को कितने ही समान लम्बाई के भागों में बाँटा जा सकता है।

२. वृत्त का व्यास खींचकर उसके समक्षेत्र व समरूप कितने भी भाग किए जा सकते हैं।

३. आयत या वर्ग का हर विकर्ण उसे दो समान भागों में बाँटता है।

४. विकर्ण द्वारा आयत और वर्ग के चार भाग किए जाएँ, तो समरूप और समक्षेत्र होते हैं।

५. समचतुर्भुज के विकर्ण एक-दूसरे को समकोण पर काटते हैं।

६. वर्ग के विकर्ण एक-दूसरे को समकोण पर काटते हैं।

७. शीर्ष को आधार के मध्यबिन्दु से जोड़कर एक समद्विबाहु त्रिभुज को बराबर हिस्सों में बाँटा जा सकता है।

८. वर्ग की किसी भुजा के छोरों को सामने की भुजा के मध्यबिन्दु से मिलाने पर जो त्रिभुज बनता है वह वर्ग के आधे के बराबर होता है।

९. वर्ग की भुजाओं के मध्यबिन्दुओं को जोड़ने वाली रेखाओं से जो चतुर्भुज बनता है वह वर्ग होता है और उसका क्षेत्रफल मूल वर्ग के आधा होता है।

१०. एक ही आधार पर और उन्हीं समानान्तर रेखाओं के बीच बने समानान्तर चतुर्भुज और आयत एक-दूसरे के बराबर हाते हैं।

११. किसी वृत्त के भीतर सबसे बड़ा जो वर्ग बन सकता है वह वही होगा जिसके कोने वृत्त की परिधि पर होंगे।

शुल्बसूत्रों की कुछ महत्त्वपूर्ण ज्यामितीय रचनाएँ

१. दी हुई भुजा पर वर्ग बनाना। इसके चार तरीके दिए गए हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. दी हुई भुजाओं का आयत बनाना।

३. दिए हुए वर्ग के 'न' गुने के बराबर वर्ग बनाना।

४. दो विभिन्न वर्गों के बराबर वर्ग बनाना।

५. आयत को वर्ग में बदलना।

६. वर्ग को आयत में बदलना।

७. वर्ग को ऐसे आयत में बदलना जिसकी एक भुजा दी गई है।

८. वर्ग या आयत को त्रिभुज में बदलना।

९. वर्ग या आयत को समचतुर्भुज में बदलना।

पाइथेगोरस का प्रमेय

युक्लिड (३०० ई.पू.) की ज्यामिति का एक प्रसिद्ध प्रमेय है – 'कर्ण के वर्ग का प्रमेय', जिसे 'पायथागोरस के प्रमेय' के नाम से जाना जाता है। यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस ५४० ई.पू. आसपास हुए। स्वयं युक्लिड ने इसे 'पाइथागोरस का प्रमेय' नहीं कहा है; उन्होंने इसकी केवल उपपत्ति प्रस्तुत की है। काफी बाद में युक्लिड के प्रोक्लुस (लगभग ४६० ई) आदि टीकाकारों ने इसे पाइथागोरस का प्रमेय कहा है, लेकिन इस मान्यता के लिए ठोस सबूत उपलब्ध नहीं है। हाँ, जानकारी मिलती है कि पाइथागोरस ने $३^२+४^२=५^२$ और ऐसे ही कुछ अन्य संबन्धों का इस्तेमाल किया था। युक्लिड का वह प्रमेय है (प्रथम पुस्तक, ४७) – "किसी भी समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने वाली भुजा पर बना वर्ग शेष दो भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बराबर होता है।"

लेकिन यह प्रमेय लगभग इन्हीं शब्दों में शुल्बसूत्रों में भी प्रस्तुत किया गया है। बौधायन का सूत्र (१.४८) है –

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च यत् पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस प्रमेय का वर्णन आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्बसूत्रों में भी लगभग इन्हीं शब्दों में किया गया है।

इन सूत्रों का भावार्थ है – किसी आयत के विकर्ण पर खींचा गया वर्ग क्षेत्रफल में उन दोनों वर्गों के समान होता है जो दोनों भुजाओं पर खींचे जाएँ।

शुल्बसूत्रों में उपर्युक्त प्रमेय की पुष्टि में परिमेय संख्याओं में कई संबम्ध प्रस्तुत किए गए हैं। उदाहरणार्थ –

$३^२ + ४^२ = ५^२$

$९^२ + १२^२ = १५^२$

$१२^२ + १६^२ = २०^२$

$१५^२ + २०^२ = २५^२$ इत्यादि।

विशेष बात यह है कि शुल्बसूत्रों में ऐसे संबन्ध अपरिमेय संख्याओं में भी दिए गए हैं। जैसे, $१^२+(\sqrt{२})^२ = (\sqrt{३})^२$

प्रश्न है : इस तथाकथित 'पाइथागोरस के प्रमेय' की खोज सर्वप्रथम किसने की? संभव है कि भारतीयों को पाइथागोरस के भी पहले इस प्रमेय की जानकारी रही हो, लेकिन केवल इसी के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि सर्वप्रथम इसकी खोज शुल्बसूत्रकारों ने की और पाइथागोरस ने इसे भारतीयों से सीखा है कारण यह है कि इस प्रमेय की जानकारी प्राचीन मिस्र, बेबीलोन और चीन वालों को भी रही है। प्राचीन मिस्र के बारहवें राजवंशकाल (लगभग २००० ई.पू.) के काहुन पेपीरस में $३^२+४^२ = ५^२$ संबन्ध दिया गया है। प्राचीन मिस्र के भूसर्वेक्षकों (हार्पेडोनाप्टाई) और पिरामीड निर्माताओं को निश्चय ही इस प्रमेय की जानकारी रही है। प्राचीन चीन की गणित की पुस्तक चाउ पेइ सुआन छिङ (ईसा पूर्व चौथी या तीसरी सदी) में भी आयत की भुजाओं और उसके विकर्ण के संबन्ध में $३^२+४^२ = ५^२$ को दिया गया है प्राचीन बेबीलोन से मिले ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के कीलाक्षर अभिलेखों में इस तरह के वर्ग–संबन्ध

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देखने को मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि व्यवहार में उनका इस्तेमाल होता था। प्राचीन गणित के इतिहासकार नेउगेबौएर का मत है कि पाइथागोरस ने उसके नाम से प्रसिद्ध प्रमेय का ज्ञान बेबीलोनी कीलाक्षर फलकों से प्राप्त किया था।

सारांश यह है कि, 'पाइथागोरस का प्रमेय' पाइथागोरस के पहले कई देशों में ज्ञात था, और इसे व्यावहारिक उपयोग के जरिए खोजा गया था। यह प्रमेय हमारी प्राचीन सभ्यताओं की देन है, एक सार्वभौमिक धरोहर है। युक्लिड (३०० ई.पू.) ने इसे प्रमेय और अन्य अनेक प्रेमेयों को भी, पहली बार तार्किक ढाँचा प्रदान किया।

π और √२ के मान

शुल्बसूत्रों में वृत्त को वर्ग में बदलने के नियम व कृत्य दिए गए हैं। इनके लिए वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात, यानी π(पाई) का मान जानना अत्यावश्यक है। बौधायन ने π का स्थूल मान ३ दिया है। अन्यत्र यह मान ३.११६३ भी दिया गया है। मानव शूल्बसूत्र से यह भी पता चलता है कि π का मान ३.१६०४ लिया गया होगा।

वृत्त को वर्ग में बदलने के प्रयास में शुल्बसूत्रकारों ने √२, जिसे उन्होंने 'द्विकरणी' कहा है, एक अच्छा मान प्राप्त किया था। बौधायन शुल्बसूत्र में यह मान है –

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3 \times 4} - \frac{1}{1 \times 4 \times 34}$$

$$= १.४१४२१५६ \ldots$$

√२ का आधुनिक मान १.४१४२१३ ... है।

इसी तरह, √३ (त्रिकरणी) का भी मान दिया गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपसंहार

तो यह शुल्बसूत्रों में वर्णित हमारे देश की प्राचीन ज्यामिति का संक्षिप्त परिचय। इसका संबन्ध स्पष्टतः यज्ञीय कर्मकाण्ड से रहा है। लेकिन यह संभव नहीं लगता कि यज्ञतन्त्र ने ही भारतीय ज्यामिति को जन्म दिया है। शुल्बसूत्रकारों ने पहले से उपलब्ध ज्यामितीय जानकारी का यज्ञतन्त्र के लिए प्रयोग किया। युक्लिड ने भी पहले से उपलब्ध ज्यामितीय जानकारी को संकलित किया था, लेकिन एक विशिष्ट तार्किक पद्धति से। युक्लिड की ज्यामिति का धर्मकर्म से कोई संबन्ध नहीं रह गया था। इसीलिए हमारे समय तक, २३०० साल बाद भी, उसका उपयोग होता आ रहा है। दुर्भाग्य से शुल्बसूत्रों की ज्यामिति के साथ वैसा नहीं हुआ।

आज शुल्बसूत्रों की ज्यामिति का मात्र ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। शुल्बसूत्रों की ज्यामिति का उपयोग करके आज भी यज्ञवेदियों की रचना की जा सकती है। मगर आज शुल्बसूत्रों के अनुसार शायद ही कहीं कोई यज्ञवेदी बनती हो। शुल्बसूत्रों की मदद से ज्यामिति पढ़ाई जा सकती है या नहीं, यह विचारणीय है।

वस्तुतः शुल्बसूत्रों की अथवा यूक्लिड की ज्यामिति वास्तविक विश्व की ज्यामिति नहीं है। यह ज्यामिति तीन आयामों वाली है। मगर आइंस्टाइन के आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार भौतिक विश्व चार आयामी है – तीन आयाम दिक् के और एक आयाम काल का। हम यह भी जानते हैं कि विश्व में स्थान-स्थान पर मौजूद द्रव्य की स्थिति के अनुसार ज्यामिति भी बदलती रहती है। पिछले करीब दो सौ वर्षों में अनेक अ-यूक्लिडीय और बहुआयामी ज्यामितियों को जन्म दिया गया है। अभी कुछ दिन पहले मुंबई में वैज्ञानिकों का "स्ट्रिंग २००१" नामक सम्मेलन आयोजित हुआ। विश्व के सभी क्रियाकलापों की व्याख्या करने में प्रयत्नशील 'स्ट्रिंग थ्योरी' विश्व के दस आयामों को स्वीकार करती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सहायक-ग्रंथ

१. The Śulbasūtras : S.N. Sen & A.K. Bag, New Delhi, 1983

२. The Science of the Sulba : Bibhutibhusan Datta, Calcutta, 1932

३. A Concise History of Science in India : Bose, Sen & Subbarayappa, New Delhi, 1971.

४. The "Pythegorean Theorem" in India, Journal of the University of Bombay, Sept. 1932.

५. The Śulba Sūtras : Satya Prakash & Usha Jyotishmati, Allahabad, 1979.

६. Euclid's Elements : Ed. by I. Todhunter, London, 1961.

७. ज्यामिति की कहानी : गुणाकार मुले, नई दिल्ली.

८. संसार के महान गणितज्ञ : गुणाकर मुले, नई दिल्ली.

९. श्रौतधर्माची स्वरूपचिकित्सा (मराठी) : चिं. ग. काशीकर, पुणे १९७७

१०. कात्यायन शुल्ब सूत्रे (संस्कृत-मराठी): श्री. दा. खाडीलकर, मुंबई, १९७४.

११. चार शुल्बसूत्रे (संस्कृत-मराठी) : डा. र. पु. कुलकर्णी, मुंबई,१९७८.

१२. भारतीय विज्ञान के कर्णाधार : डॉ. सत्यप्रकाश, नई दिल्ली, १९६७.

१३. 'शैक्षिक संदर्भ' २००० के अङ्कों में शुल्बसूत्रों के बारे में रामकृष्ण भट्टाचार्य के लेख

१४. कात्यायन शुल्बसूत्रम् (संस्कृत), काशी, १९२७.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

A Conclusion derived from the Work 'Nine Steps into the Antiquities of Vedas'

– Dr. Mohan Gupta

In my Work "Nine Steps into the antiquities of Vedas", I have dealt with an inner cycle of human Yugas which started around 12800 B.C Based on it, I have tentatively divided four periods as follows:-

Celestial	{1. Kṛta Yuga - 12800 B.C. to 8000 B.C.
Dvāpara	{
upto 3102 BC	{2. Tretā Yuga - 8000 B.C. to 4400 B.C.
Celestial	{ 3. Dvāpara - 4400 B.C. to 2000 B.C.
Kali Yuga	{ after 3102 BC
	{ (Mahābhārata War 1952 BC)
	{ 4. Kali Yuga - 2000 B.C. to 800 B.C.

Kali Yuga Sandhi - 800 B.C. to 400 A.D.

On the basis of the conclusion derived in the work, it may be concluded that it is noteworthy that vernal equinox coincided with first point of Aswini in 499 A.D. according to astronomical tradition.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

In our journey towards the antiquity of Vedas, we have finally landed at ninth firm step which takes us to about 12800 B.C. But this is also not a primitive stage in as much as a developed knowledge is manifested by the references, which we have made use of. Our task now is to assess how much depth is there in terms of time beyond this ninth step and whether there are references, traditions or other indications that suggest still ancient time-frame. On a careful examination we find that there are some very clear references in our national memory that speak of very ancient times. Thus the very famous piece of Srimad Bhagavadgita- मासानां मार्गशीर्षोऽहम् ऋतूनां कुसुमाकरः[१] I am Margsirsa among the months and Vasanta (Spring) among the seasons ' gives a clear connection with Margaśirṣa month and spring season which means that at some stage the Vernal Equinox must have been within 15 days of Marg Purnima; at the most it could have fallen on Kartika Purnima to entitle Margaśirṣa to be included in Vasanta season. These days the Vernal Equinox is in Uttarabhādra which falls between Phalguna Purnima and Chaitra Purnima. Hence Phalguna and Chaitra are the months of Vasanta. Similarly, at the time to which this passage refer, the Vasanta or Spring would have been in the months of Kārtika or Mārgasirṣa. If we take the Vernal Equinox on Kārtika Purnima, then the Vernal Equinox would be in Visakha (oe Libra) 201^0-13' behind Aswini. If we take Vernal Equinox on Marg Purnima, it would be in

1. Bhagavadgita X-35.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Moola _ 240^0-43' behind Asvini In the former care, the antiquity goes beyond 14500 B.C. and in the latter care, it would be around 17000 B.C.

In Mahabharata, there is a reference to the series of Naksatras from Sravana.

श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतव शिशिरादयः

(Maha - Adi 71.34 and Ashv. 44.2)

Even now, we celebrate Vasanta Panchami on Magha Sukla 5 which means sometime in the hoary past the Vernal Equinox must have fallen on Vasanta Panchami day i.e. in Shatabhisa. In Mahabharata Vanaparva (Chap 230)- धनिष्ठादिस्तदाकालो ब्रहमणा परिकल्पितः - the start of the time has been indicated from Dhanistha. The Vedanga Jyotish first phase started with Vernal Equinox in Dhanistha -

स्यात्तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनं हयुदक्

Here the word 'उदक्' is in earlier sense of north hemisphere. In the Arch (आर्च) version of this verse, the words ऽयनं हयुदक् have been replaced by दिनंत्यच. That also indicates a different meaning to this portion of the verse than the modern connotation of Uttarayana or Winter Solstice. Besides 'tape' here is not indicative of month as Māgha is already there: but it indicates a season i.e. warm season. The Aryans were living in Sapta Sindhu or the present Punjab at a latitude around 30^0 north. This area used to get warmed-up the moment the Sun came on the equator. Primarily, there were only two seasons. the cold and the warm season. It is in this sense that the word

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'tapa' has been used here. Besides, in Vedānga Jyotish, the year was 366 days long, which is possible only at that distant period of antiquity. Scholars have not paid sufficient attention on this very important phenomena of Vedānga Jyotish period that the year then was 366 days long as against 365 days 15 gh. 31 pl. & 31 vpl in Siddhantic Jyotish days and 365 days 15 gh. 22 pl. these days. It appears the duration of a year is getting shorter and shorter gradually. In the folk songs of Uttar Pradesh, even now they talk of Vasanta in Magha -

माघ मास रितु होत वसंत ! सुत विदेस तन तज गए कंत[१]

'There is spring season in the month of Magha etc.'

We have seen vernal Equinox on Vasanta Panchami (Māgha Shukla 5); before that it must have happened on Māgha Shukla 1 also which heralded the first phase of Vedanga Jyotish when Vernal Equinox was in α or β Delphini. This period comes as 292^0 - 29'/50" = about 21058 BC.

The anuvak of Taittiriya Samhita quoted earlier--

'फल्गुनीपूर्णमासे दीक्षरेन् मुखं वा एतत् संवत्सरस्य
यत्फल्गुनीपूर्णमासो..............चित्रापूर्णमासे दीक्षरेन्
मुख वा एतत् संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासो'[२]

---

1. 'Ramayana ka kavyamarma : Vidya Niwas Misra. : Prabhata Prakashan. Delhi 2001 P. 180
2. Already translated (Tait. Sam. VII-4.8)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'These Phalguni Puranmasa and Chitra Puranmasa have been very often quoted in Various Brahmanas as the first month of the year when the Samvatsara began. They also have a clear relationship with Vasanta.' In Taittariya Brahmana 1.1.2 मुखं वा एतत् ऋतूनां यद्वसन्तः etc. a very clear relationship between Phalguna Purnamasi and Vasanta has been established. Sayana also comments this to mean Vasanta only. Tilak also accepts this as one of the meanings but rejects it on the ground that is takes our antiquity far back i.e. some 22500 B.C. when the Vernal Equinox was in Purva Bhadra. But the conclusion is inescapable. The Vernal Equinox was in Purva Bhadra when Phalguna full moon was the first day of the year and it must have been in Revati or Aswini when Chitra full moon was the last day or the first day of the year.

There is yet another reason to believe that Vasanta, Madhu and Aswini have eternal relationship and it lies in the invocations to Asvins- the twins (twin stars also) in Rigveda.

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति
प्रिया दिवः स्तुषे वामश्विना बृहत् (I-46-1)
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे[1]

---

1. 'Now Morning with her earliest light shines forth, dear daughter of the sky : High Aswins. I extol your praise' [Hymns of Rigveda:Ralph T.H.Griffith Vol.I Chaukhamba 1963 p.63]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिन्धुनां रथः धिया युयुज्र इन्दवः[१] (I-46-8)
उरु वां रथः परिनक्षति द्या मा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम्
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन् यत् सी वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः[२]
(हे माध्वी उक्त लक्ष्णो मध्वा मधुरेण पयसा मधु मधुर सोमरस प्रुषायन् सिंचत्वध्वर्यवः। यद्यस्मात् सी सर्वतो वां पृक्षोः युवयोः सोमं पक्वाः पक्वाः यवा भुरजंत प्राप्नुवन्ति – सायण)
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम्
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना[३] (4-45-3)
(दृतिं मधुमन्तं हे अश्विना वहेथे। धारयथ – सायण)

The Aswins have married daughter of the Sun (Surya). They came early in the morning in a beautiful chariot alongwith charming Usa. A.C. Das Gupta has also captured this very scene for his thesis.

---

1. 'The heaven's wide Vessel is your own: On the floods shore, your chariot waits Drops, with the hymn, have been prepared' [Griffith P.63]
2. In the wide space your chariot reached heaven, what time it turned hither from the ocean' Sweets from your sweet shall drop, lovers of sweetness. These have they dressed for you as dainty viands. [Griffith: Ibid.P.449]
3. Drink of the Meath (Madhu) with lips accustomed to the draught harness for the meath's sake, the chariot that you love, refresh the way you go, refresh the paths with meath; hither, O Aswins bring the skin that hold the meath [Griffith:P.451]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'It was over this sea (the eastern sea) that the Aswins, the twin deities that preceded and heralded the dawn used to come to sapta Sindhu sailing in their boats which they left moored in the harbour on the sea coast (RV I-46-8).[1] They bring Madhu and spread madhu all over, nay, they are madhu and the grains mature up with them. The twin stars Aswini must have been very prominrably noticed by Vedic Aryans at the beginning of the year at the Dawn immediately before Sunrise. So that it gives a corroborating situation for the Vernal Equinox to be in Aswini. 'It was there around 285 AD. Before that, it must have been there in a remote antiquity of about 25000 B.C. when chitra fullmoon was the first day of the year as very categorically stated in the famous anuvak of Taitt. Samhita (VII-4-8) (quoted and translated earlier). In our tradition also the entire cycle of time computation दिनमासवर्षयुगकल्पा: - the day, month, year, yuga and kalpa- all started from चैत्रसितादेरुदयात् the first day of the bright half of Chaitra i.e. when the Vernal Equinox was at the starting point of Zodiac- Aswini. This possibility reminds of the thesis of A.C. Das in his famous book 'Ṛgvedic India' based on the geological evidence that 'the original cradle of Aryans was, -- Sapta Sindhu, which included the beautiful valley of Kashmir on the north and Gandhar on the west. Its southern boundary was the Raputana sea, and eastern boundary the Eastern Sea covering the Gangetic

---

1. Ṛgvedic India: A.C.Das, R Cambray & Co. 1927 P.12

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

trough,[1] As some of the ancient hymns of the Ṛgveda contain evidence and indications[2] of a different distribution of land and water in Sapta Sindhu, we are compelled to go back to that ancient time when such a distribution actually existed. The results of geological investigations go to show that modern Rajputana was a sea in the tertiary Era and parts of it subject to marine transgressions converting them into epi-continental seas even in comparatively recent times and the Gangetic trough to the east of Punjab was also a sea down to the end of the Pleistocene epoch. As there are distinct references to these seas in some hymns of the Ṛgveda, we cannot help assigning their age to the time when such a distribution of land and water actually existed. There is also undoubted evidence to show that man flourished on the globe and in India in the Pliestocene epoch[3]... It should be borne in mind that the Ṛgvedic hymns were composed during a very long period as there is distinct

---

1. A.C.Das: Ṛgvedic India: Preface P xiii
2. R.V.(VII-95-2), एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् R.V.(X-136-5) वातस्याश्वो वायोः सखाऽथो देवेषितो मुनिः। उभौसमुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः 'The Muni is the areal stead and friend of Vayu whom all the Devas feel an eagerness to behold and who dwells in both the seas-that which is in the east and that which is in the West (Ṛgvedic India P.11)
3. Ṛgvedic India: A.C.Das P. 578-579

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

reference[1] in the sacred scripture to hymns that had been composed in the early and middle ages and of hymns that were compared in the later age of Rgvedic times[2] . There were three seas on three sides of Sapta Sindhu. There was another sea towards the north below the confines of modern Tuvkestan extending as far as the Arctic ocean and as far west as the Black sea which disappeared in comparatively recent times leaving the Black Sea, the Caspain sea, the sea of Aral and Lake Belkars as its remnants and converting its shallow bed into steppes... There four seas round about Sapta Sindhu have been distinctly mentioned in the Ṛgveda thereby proving its heavy antiquity which goes back to Pleistocene or post-Pleistocene epoch[3].

'The upheaval of the bed of the Rajputana Sea and the submergence of the southern continent in Post Rgvedic times probably caused a heavy flood in Sapta Sindhu by the displacement of the vast volumes of its

---

1. Ṛgveda III.32.13 (quoted ibid preface P.i) and Ṛg. VI.21.5

2. यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम्। यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्योमध्यमेभिरुत नूतनेभिः (Rg.III-32-13) 'The worshiper, by his conservatory sacrifice has made Indra present. May I bring him to my presence to obtain new wealth, him who has been exolted by praises, whether ancient, mediaeval or recent.

3. Ṛgvedic India: P.580-581

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

waters which is known as Manu's flood'.[1] As regards my calculation of the age of some of the oldest hymns of the Ṛgveda, which I have set down to Pleistocene, or at any rate post- Pleistocene epoch, I am afraid the vedic scholars will accuse me of romancing wildly. But is geological deductions are found to be correct, my calculations, which are based on them cannot be wrong. They will either stand or fall with them. The Ṛgvedic civilization had its beginning in Sapta Sindhu about 25000 years ago and was at its height probably in the seventh millennium B.C. when most of hymns were composed and when there still existed a sea or an arm of Arabian Sea in Rajpatana.[2] There can't be better words to conclude this article of mine on Vedic Antiquity than these by that doyan of ancient Indian history and culture and an stupendous and committed reader of Rigveda whose theory has not been rebutted as yet by any different geological findings.

To sum up, we have delved deep into the antiquity of Vedas through these nine steps and have reached a period more ancient than any civilization of the world. Truly Vedas are the most ancient books of the world. Among these nine steps, on the first step is Shakāri Vikramāditya, the author of Vikram Era; at the second is the great Chandra Gupta Maurya, at third Lagadha and his Vedanga Jyotish and at the fourth is the great seer

---

1. Ṛgvedic India: A.C.Das P.582
2. Ibid P. 590-591

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

VedaVyasa and the Mahabharata War. The fifth period is the Krittika period, the period of Indus-Saraswati Civilization, prosperous and endowed with urban qualities. The sixth is the Mṛgasira or Orion period, the precursor of Indus-Saraswati Civilization while the seventh is the period of Ramāyaṇa and Atharvaveda, called the Punarvasu or Aditi Period. The eight is the Period of Puṣya and Āśleṣā when Bṛhaspati or Jupiter was born first and the ninth period is the beginning of Kṛtayuga- the Chitra period, which can also be termed as the period of the first ancient king, Ikṣvāku, the patriarch of all ancient dynasties of the present cycle of Vaivasvata Manvantara. Glimpses of civilization life can be seen, heard and discerned even beyond this remote antiquity in the vast abyss of time, traces whereof are recorded in the sacred syllables of our ancient fore.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Symbolic Trends and Tendencies in the Vedic Architecture with special Reference to Yupa

– Dr. Sushila Pant

India of the 21st century as well as 'Bharat' of the Vedic age presents a diaspora of race, culture and language in the society. This has contributed to the socio-religious and cultural mosaic with rich traditions, rituals, rites, motifs, symbols and myths through the ages.

In the Vedic literature one finds ample references of architectural symbolism and images of the Vedic culture denoting he philosophical and idealistic aspect on the one hands and on the other, the visible manifestation of the invisible'.

Vedic culture has provided a rich heritage to Indian Art, including many interesting motifs like Swastika, Lotus, Conch, Umbrella Altar, Wheel, Sun, thunderbolt, Nāga, Garuḍa, Tree of life (Kalpvrikśa) and the full vase (Pūrṇa Ghata). These symbols drawn both from animal and natural world laid stress on the value of imagination. B.Malinowaski suggests that in anthropological tradition

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'myths' and 'motifs' are seen as justification of institutions. The vedic architectures, though rudimentary in form but rich in content, continued to influence the socio-religious architectures of the successive ages. The animistic philosophy was transformed into realism through structures and symbols.

The Indian Art history highlights the essential abstract and harmonious blending, the geometrical devices, the plastic trends and the linear contents as essence of Indian cultural tradition. The image of India as a whole projects cults and faiths of the people strictly following their ritual ablutions and prayers, chaṇting of ritualistic mantras for the purpose of worshipping the divine being on the one hand, and on the other, for adoring the religious institutions of Arts[1]. To have a better perspective of the Vedic Art one should note the stylistic sequences, the evolutionary stages as well as its technical code etc.

The Vedic traditional code is significant through the ages. To understand the Vedic art trends it is imperative on the part of the Art Historian to know the Vedic discipline or the Vedic normative approach. It is neither purely ideological nor totally based on a preplanned content. The field of Indian art depicts the age old practices of socio-cultural expression and at the same time adopted the religio-philosophical approach. This

---

1. Radha Kamal Mukerjee, The flowering of Indian Art. The growth and spread of civilization p. 18, 1964.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

could also be on account of metaphysical idealism and universal message of unity in diversity. Indian culture is alive with its contents and components. O.C. Ganguli opines that examples of plastic art contemporary with the Vedic literature are very few yet it can be of a significant theme for future study for the researchers working in the field of pre-historic art. The ancient symbols owes its origin somewhere in the Brāhamanical Vedic culture[1]. Coomarswamy also observes that symbolism and Iconography of Indian art can almost always be referred to Vedic formulation and hence, it is difficult to explain[2]. But for the modern Art Historians art is neither sacred nor profane. However, this is not applicable to the Vedic Art.

The Vedic literature provides a variety of architectural structures, mainly, dwelling houses, Vedic altars, monumental stones, memorial columns (Pillars) different types of Śmaśānas and sacrificial Pillar (Yūpa)[3] the most significant example of the Vedic Architecture.

The Vedic hymns provide references of fire altars (Yagñya Vedi), fire-place (Yagñya śālā) which could be interpreted as architectures associated with religious functions. The Taittirīya Samhitā mentions various types

1. Ibid, p. 45.
2. Ibid, p. 47.
3. Atharvaveda, 10.7.7, Aitereya brāhmaṇa, 7.3, Aśvalāyana Gṛhyasūtra, p.193 (bhavati tathā paśuru badhvā yūpe..............)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

of Vedies having different shapes like Rathchiti, Shyenchiti and human-figure with raised hand. It is interesting to note that prior to 6th century B.C. we do not have any specific reference of any religious architecture. It was only after the mahā-parinirvāṇa of Buddha, Stūpa architecture was introduced, which, in all probability, was evolved out of the Vedic Samādhi[1].

According to the Vedic traditions bones of dead persons were buried in the earth. So also in the post-Vedic period erection of earthen tumuli was commonly associated with the burial or cremational rites. In the Śatpatha-Brāhmaṇa, there is a clear indication of construction of Śmaśāna both for the Devatā's and for the Asuras[2]. It is suggested that the square Śmaśānas (Chatuh Śrakti) were dedicated to the Gods and the circular (Parimandala) ones were to be erected for the Asuras. The Asura Śmaśāna was erected on a base and enshrined the relies of the dead. At the four corners of the Śmaśāna pegs were fixed. These pegs later on might have taken the

---

1. Cave Architecture from Mālābar Kerala at Mannapuran Tellicheri are the examples of some rock tombs is the samadhi from.

2. P.V.Kane, History of Dharmśāstra, Vol. IV.P.247, Daivyāyāh......tah.........smaśānam.....yā Āsuryāh.......śatapath brahmaṇa X.III. p.1375.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

form of pillars symbolizing the replica of the Śmaśāna yūpa[1].

The practice of raising sepulctaral mounds in the Vedic period later on followed a supplementary tradition of erecting a pillar or a wooden post in the form of yūpa[2]. In the Ṛgveda the word yūpa refers to "logs of wood lying on the earth". It was generally used for tying the sacrificial animal[3]. Besides this, the yūpa in general was "to denote lithic column raised as memorial to the performances of sacrifices by particular individual."

In the Ṛgveda the yajñya yūpa was identified with Puruśa. The sacrificial yūpa stands for Skambha, under its chain (Mekhalā) indicating that the total materialistic world or Puruśa existed freely without any bondage. In the Vedic mythology the self or the sacrifices symbolized the golden imperishable Man or Absolute[4].

Art History has a glorious tradition with a rich cultural heritage of which various modes of worship either secular or religious in nature is a significant fact. From the earliest times till the present date the foot-prints

---

1. Mahābhārata, Araṇyaka parva, p.2229, chaitya yūpa śatānikitah for reference of śmaśāna yūpa or chaitya yūpa.
2. Sushila Pant, The origin and development of stupa architecture, p.17
3. B.S. Upadhyaya, Bhārtīya Kalā Kī bhūmikā, p.4
4. V.S. Agrawala, Bhartiya Kala, p.160

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

or seat of a saintly person or holy preacher is considered pious and therefore, is an object of devotion. So in the case of a Pillar (Stambha) installed in the yagña, which was named as yagñyayūpa (Sacrificial Pillar). There are ample evidences that the institution of yagñya adopted the worship of God in the architectural from of Devaprāsāda. Another example of a Bull Pillar marking ancestor worship. With the same notion yūpas were associated with the tradition of sacrifice symbolizing the manifest cosmos and unmanifest divine[1]. The sacrificial yupa represented the identity of from in an uniform manner as a Stambha (Skambha). There is a reference of a 16 sections stone built yūpa associated with Viṣṇu sacrifice.

The yūpa as a sacrificial post owes its origin to the commemorative Vedic practices through the performance of various yogñyas. In this context the Mahābhāśya mentions that after the performance of the Aśvamedha a replica of Aśva-yūpa was installed on the sopt. It is very likely that it is the imagination form of the Sthūṇa (Pillar)[2] installed in the Śmaśāna. We can assume that from the sacrificial yūpa the Skambha was evolved signifying the form of Bramhā (Prajāpati) which later on

---

1. Radha kamal Mukerjee, The flowering of Indian Art, The growth and spread of civilization, p.47
2. Alica Boner, Vāstu sūtra Upniṣad evolution of puruśa from pillar (of the universe) i.e. the symbol of sacrifice p.67

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

was associated into a Śmaśāna yūpa or Chitya yūpa[1]. Prajāpati also erected a pillar for amazing the whole universe[2]. The idea behind the concept of Pillar worship, in all probability, motivated by the folk traditions associated with the personality cult. We have examples of Lauriyā-nandangarh Pillar which was known by the local people as 'Laurbābā' (Lahur Bābā) a symbol of semi-divinity. The Besnagar Garuḍa Pillar, popularly known as Khāmbābā (Khāmba refers to Pillar). In the ancient folk lores such free standing sacred pillars were installed as village deities (Grāmdevatā) with a religio-mystic purpose. We have also examples of a typical rock tomb (Samādhi) of Vedic nature from Kerala at Mannapuram where in the center stands a thin pillar for bearing the load of the tomb or wooden 'circular hut'. This again shows the importance of pillar structure in the social life of ancient Inida Archaeological evidences, particularly, inscriptions mention interesting details regarding installation of yūpa on some other important occasions, such as, to mark the event of victory, after performing sacrifice, at the time of

---

1. Neverthless it could be assumed that in the Vedic period chaitya (chaitya yūpa) was a place of worship and besides being linked with yagñya sthāna, Hymns from the Vedas, op cit, śloka 21, p.206.
2. Alica Boner, Vāstu Śutra Upniśad, chapt. VII, P.133 Sadasiva Rath sarma Bettina Baūmer.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

donation or any act of charity[1]. This indicate that the yūpa was not only a sacrificial post or a pillar but if was a commemorative symbol of love, peace and glory. The Numismatic evidences also confirm the existence of such columns[2] (yūpa or stambha). According to G.N. Banerjia the erection of the yūpa was not confined to any particular part of India but it was a feature associated with sacrificial tradition throughout the country[3]. Pillar as a living symbol has its relation with the age old traditions of magicomystic practices almost in all civilizations. The Indian Art is full such examples where pillars generally project their identity on the basis of the ornamental scheme on the top (capital) like Chakra Stambha Vṛśa Stambha, Garuḍa stambha etc. In the Tantrik mystic practices Pillar plays a very significant role in the 'Stambhan-Kriya'. In the early centuries of the Christain-ear the commemorative stone yūpas were erected in honour of sacrifices as a mark of respect and to locate the event. B.C. Chabra opines that the tradition of erecting the yūpa continued till the Gupta period with its revived trends.

In the Mṛcchakatika there is an interesting reference where it is mentioned that the city of Ujjaini was adorned

---

1. Sushila Pant, The origin and development of stupa Architecture, p.14
2. Ibid, p.14
3. J.N. Banerjia, Indian Votive and memorial columns; JISOA, vol. VIII.p.1920

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

with the setting up of the Yūpa. This lends support to the view that the Yūpa also served other purposes like beautifying the city of a decorative motif. But it is also true that in the Vedic and Brahamanical period Yūpa was primarily associated with the sacrificial rites[1], to maintain the dignity of the Yagñya and the Yagñyik as well as to symbolize the sanctity and decorum through the rituals. The popular beliefs and ancient traditions suggest the worship of Pillar as divine being which V.S. Agarwala appropriately describes as 'Stambha Maha' [2]

Yūpa was erected either out of Khadira, Banyan, Bilva and udumbara wood[3]. But Altekar maintains that the yūpa was lithic in nature. The Buddhist texts also mentioned yupa as a Pillar. Brick and stone pillar, similar to wooden Pillar were associated with the earliest examples of Piprahwā and Bhaṭṭiprolu stūpas. These Brick Pillar as per Vedic tradition were installed in the Centre of the Śmaśāna[4]. We have ample evidences that the institution of Yagñya adopted the worship of God, in the form of a structure like Devaprāsād. It is in this strain

---

1. Sushila Pant, The origin and development of stupa Architecture, P.15
2. V.S. Agrawala, Lok Dharma, Refer stambh Maha.
3. Quoted from- Alica Boner, Vāstusūtropaniśad, relevant verses from thevaitān sūtra which refers that the yūpa is made of Khadira wood or of stone.
4. P.L Gupta, Bhārtiya Vāstu Kala, p.29

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

that the yūpa were associated with the tradition of sacrifice symbolizing the real and celestial divine[1].

The Vedic symbology is a combination of Vāstu (Architecture) AND ŚILPA (sculpture) Vedic motifs and symbols in Indian Art represent a meaningful approach towards spirituality and mythical identity. The Vedic rituals were a part of sacrament where every householder used to perform daily prayers, sacrifices (Yagñya) and worship of deities. Even the installation ceremony of the Yūpa followed the Vedic rituals[2]. The divine nature of the Stambha represents the link between the earth and heaven[3] a symbol of vyakt and Avyakta. It also illustrates

---

1. In the ritualistic ceremony of the yūpa (i.e. yūpasthāpanā) at the Vāstuyāga the post is worshipped with aṣṭa karma pūjā the post thus, consideredas karman (i.e. ritualistic action) and the topmost part is worshipped is its totality with the verses Viśuāyanamah. Thus, the complete structure of yūpa in its religio-cosmic from is a representation of Viśva-karma. Similar expression is mentioned is the śilparatnakośa Yūpam sākśisvarupeṇa vāstukarmasya Purṇatāh.
2. Yadanen (yagñyam) agopyastasmadyūpo namah. Aitereya Brāhmaṇa, 2.1Khādire yūpo bhavati; Taittirīya Brāhmaṇa, 1.2, 3.7.2, śaptadasā ratriryūpobhavati; Śatapath Brāhmaṇa, 5.2.1.5
3. Alica Boner, Vāstu sūtropaniśad, Ṛgveda I, 22, 19, Atharva-ved samhita x,7.32 & 35 Refer that the skambha is the link between earth and Heaven.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

the fundamental principles of line and circle denoting the visible forms in the universe.

Paul Mus points out the symbolic inter-relation of yūpa form with the Brahmanilal concept of blazing fire, growing tree and the man in action. This suggests three interchangeable images of the cosmic pillar respectively. The interior symbol of Puruśa means light, the burning flame relates to the sacrificial yūpa into structural from and feature[1]. Yūpa is the solar symbol. It also stands for Skamabha (axixmundi) suggesting the purposive existence of its erection in an individual manner of else where it relates to a rligo-mystic phenomenon. Yūpa, thus, represents a structural form of the living and immortal concepts of the Vedic culture. Besides this it also reflects the ideological values metaphysical contents. Associated with Prajāpati and Viśṇu yūpa symbolize the creative and protective aspects of human nature[2].

According to Vedic myths and legends the shilpin derived the concept of human from (images) from the pillar irrespective of its religious or secular nature[3]. In the

1. Paul Mus, Indicated symbolic interrelation associated to yūpa for with Brahmanical concept pointing out blazing fire, growing tree, the man inaction. Symbolically the scholar suggests the inter changeable images of the cosmic pillar respective quoted from Rūpa Pratirūpa, p.28
2. Rūpa Pratirūpa, p.26.
3. Alice Boner, Vāstu Sūtropaniśad, sūtra 19-68.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

backdrops of early traditions of religious rituals and socio-cultural trends the yūpa in its architectural from developed and designed as per iconographic presentation of form and figure with a clear concept of totality. Some of the scholars, therefore, are of the opinion that the yūpa in the from of Puruśa signify gross and subtle as well as the material and spiritual elements through various layers of its iconic from. The yūpa from below upward also represents the three gunas of images i.e. Sattva, Rajas and the tamasa respectively[1]. Besides this, the yūpa in its religo-cosmic form is a representation of Viśva-Karma (i.e. Karman as Post) and the top most portion. The yūpa structure occupies perhaps the utmost significant place among the archetypal form of a pillar (Stambha) linked with the cosmic puruśa. It represents a continuity with the Vedic symbolism of Puruśa and yūpa form which is not only visible but also audible in response[2].

Vastuśūtra upniśada also mentions the symvisibility of yūpa form with the puruṣa. As the nature (bhāva) of the Puruṣa is conceived of the size of the thumb means only light (the flame) the yūpa thus, directly Co-related to the sacrificial pillar. Division in the form of yūpa explains the lowest sections as the Bhūmi Devatā (the Divine Earth), probably to mark the materialist concept of

---

1. Ibid, p.126.
2. Quoted from Maryla Falk, Nāma rūpa, Kapilā Vātsyāyana accepts the sameUpaniśadic theme i.e. regarding cosmic Vision of puruśa.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

worldliness. Likewise, the Mithuna Part above the first one contains Rudra-Devatā and the upper most section refers to life breath personifying Prajāpati i.e. symbol of Puruśa. The concept of Puruśa as yūpa signifies the complete idea of Man which is possibly borrowed from the elemental structure of the cosmos as evident from the literary sources[1].

Yūpa in its many variant from Pillar, Stambh, Samādhi, whether sacrifical, or commemorative or decorative, have their origin in the Vedic culture. Thus yūpa, as a symbol of Puruśa represents an inherent relations between spiritual and material-world.

1. Alica Boner, Vāstu sūtra upniśad, p. 18.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक काल में शल्य कर्म की विधाएँ

- प्रो० दिनकर गोविन्द थत्ते[1]

ज्ञान की धारा का प्रवाह जब आरम्भ होता है, तब बहुधा विद्वान् उसी में अवगाहन करने लगते हैं। उन्हें इस बात का विस्मरण हो जाता है कि यह ज्ञान मूलतः कहाँ से आरम्भ हुआ है और किस मार्ग से अवतरित हुआ है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान श्रुति-प्रधान हो गया है और स्मृतियाँ उनकी अनुगामिनी हो गयी हैं या यों कहें कि -

श्रुतेरिवार्थ स्मृतिवान्वगच्छत्॥

यही सिद्धान्त वेद और आयुर्वेद के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी घटित होता है। आयुर्वेद प्रत्यक्ष सिद्ध शास्त्र होने के कारण एक ओर वेद की प्रामाणिकता का साधन बना तो दूसरी ओर विविध दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ-साथ प्रत्यक्ष ज्ञान का सहायक हुआ। दर्शन और विज्ञान का यह समन्वित उत्कर्ष ही आज के विश्व में नवीन एवं आधुनिक ज्ञान के रूप में प्रकट हुआ और यही नवीन ज्ञान विस्मयजनक होकर पाश्चात्य ज्ञान के रूप मे उभरा है। यही कारण है

---

१. शोध-सहयोग:
   १. डॉ. ओम्प्रकाश तिवारी, शोध अधिकारी, अखिल भारतीय शरीर शोधसंस्थान, लखनऊ।
   २. डॉ. रामराजसिंह चौहान, प्रवक्ता शरीर-रचना, शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, उज्जैन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि हमने अपनी स्मृति एवं वेद आदि आगम ज्ञान को भुला दिया है। उदाहरणार्थ राइट बन्धु ने जैसे वायुयान के उड़ान के सम्बन्धों में मूल ज्ञान वेदों से प्राप्त किया था, परन्तु यह तथ्य लोग भूल चुके हैं।

वैदिक वाङ्मय एक महान् वटवृक्ष के समान विशाल ज्ञान है और संसार के समस्त ज्ञान-विज्ञान को अन्तर्भूत किये हुए है। यह वाङ्मय सामान्यत: संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और वेदाङ्ग इन चार खण्डों में विभक्त है। चिकित्सा शास्त्र का मुख्य उपजीव्य अथर्ववेद है और अथर्ववेद के व्यावहारिक उपादेयता के कारण यह समाज में प्रतिष्ठित हुआ है। राजकाज में अथर्ववेद का ज्ञाता ही गुरु, पुरोहित और मन्त्री हो सकता है, ऐसी मान्यता रही है।

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारग:।
निवसत्यपि तद् राष्ट्रं वर्धेत निरुपद्रवम॥

धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद तथा आयुर्वेद उपवेद हैं। चरक, सुश्रुत, काश्यप आदि आयुर्वेद संहिताएँ अथर्ववेद से सम्बद्ध हैं। आयुर्वेद के समस्त ज्ञान का आदिस्रोत वेद ही है। आयुर्वेद प्रत्यक्ष कारक ज्ञान होने के कारण इसके आधार पर वेद का प्रमाण सिद्ध किया जाता है। भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुत के प्रारम्भ को "अर्थात् वेदोत्पतिं व्याख्यास्याम:'' ऐसा कहकर आरम्भ किया है।

वेदों में रुद्र, अग्नि, वरुण, इन्द्र, मरुत आदि दैव्य भिषक् कहे गये हैं। परन्तु इनसे भी अधिक प्रसिद्ध दो अश्विनौकुमारों के नाम उल्लेखनीय है जिन्हें "देवानाम् भिषजौ" के रूप में स्वीकार किया गया है। इन दोनों ही वैद्यों द्वारा शल्य के क्षेत्र में जो चमत्कारिक तकनीक अपनाई गयी उसका उल्लेख ऋग्वेद में वर्णित है। इस तथ्य के आधार पर यह भी अनुमान किया जा सकता है कि अश्विनी कुमार ही आरोग्य, दीर्घायु, शक्ति, प्रजा, वनस्पति तथा समृद्धि के प्रजाता रहें है।

'अश्विनौ' शब्द को पक्षी के दो पंखो के समान माना गया है। चिकित्सा विज्ञान के सैद्धन्तिक एवं व्यावहारिक दो पक्ष हैं। सैद्धान्तिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पक्ष का नाम है ज्ञान एवं व्यावहारिक पक्ष का नाम है कर्म। कर्म या व्यावहारिक पक्ष द्वारा प्रात्यक्षिक शल्य कर्म किया जाता है। जिसे आज के युग मे Surgical techniques या Operative procedures की संज्ञा की दी गई है। भिषक् को दोनों ही पक्षों का ज्ञाता या उभयज्ञ होना चाहिए।

अश्विनी पुत्रों द्वारा शल्यकर्म के माध्यम से चमत्कारिक चिकित्सा किए जाने के निम्न प्रात्यक्षिक कर्मो का उल्लेख वेदों में उपलब्ध हैं, जिसके सम्बन्ध में निम्न तथ्य जानना आवश्यक है।

१. अत्रि के कठिन अग्निदग्ध की चिकित्सा कर उन्हें युवा बनाया।

२. अन्ध कण्व को आँखें दीं।

३. परावृक ऋषि अन्धे और लंगड़े थे, उनके रोगों का निवारण किया।

४. राजा खेल की कन्या विशाला की टाँग टूट गई थी। उसे लोहे की टाँग देकर युद्ध के योग्य बनाया।

५. शम्बर के साथ युद्ध में अतिथिग्व, कशोजुन तथा महादिवोदास की रक्षा की।

६. वेन का पुत्र पृथि घोडे पर से गिर गया था, उसे बचाया।

७. युद्ध में शर्याति की रक्षा की।

८. युद्ध में कृशानु को बचाया।

९. दधीचि के शिर को हटाकर वहाँ घोड़े का शिर प्रत्यारोपित किया और पुनः उसे हटाकर उनका शिर लगाया।

१०. ऋज्राश्व अन्धे हो गये थे, उन्हें अच्छी आँखें दीं।

११. नृशद के पुत्र का बाधिर्य दूर किया।

१२. श्यावाश्व घायल हो गया था, उसे ठीक कर दीर्घायु बनाया।

१३. सोभरि की युद्ध में रक्षा की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१४. शरीर के टूटे अङ्गों का संधान किया।

१५. ऋषि श्रोण के जानुसन्धिगत दौर्बल्य को दूर किया।

१६. कक्षीवान् के अन्धत्व एवं बाधिर्य को दूर किया।

१७. यक्ष के कटे शिर को जोड़ा।

१८. पूषन् के टूटे दाँतों को ठीक किया।

१९. भग के विदीर्ण नेत्रों को ठीक किया।

२०. इन्द्र के स्तम्भ की चिकित्सा की।

अथर्ववेद में ऐसे कर्मों के अतिरिक्त शल्यकर्म के सम्बन्ध में:

१. अपची वेधन (७.७४.१-२)

२. गर्भाशय भेदन (१.११.४)

३. विद्रधि (६.१२७.१) चिकित्सा

४. रक्तस्राव निवृत्ति के लिए धमनी बन्धन (१.१७१)

५. व्रण चिकित्सा (२.३.१-६)

आदि का भी उल्लेख मिलता है।

अश्विनियों द्वारा युद्ध में विश्पला की कटी हुई जंघा को आयसी (लोहे की जंघा) से जोड़कर लगाने एवं उसे शीघ्र ही चलने योग्य बनाने का उल्लेख ऋग्वेद के निम्न सूक्त में मिलता है।

सद्यौ जंघामायसी विश्पलायै धनै हिते सर्तवे प्रत्यधन्तम॥

(ऋग्वेद १.११६.१५)

इस ऋक् का विच्छेदित अर्थ निम्नवत् है।

धनेहिते	–	युद्ध में गयी
विश्पलाद्यै	–	विश्पला को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सद्यः	–	तत्काल ही
सर्तवे	–	चलने के लिए
जंघा आयसी	–	लोहे की जंघा
प्रत्यधत्तम	–	लगा दी

अश्विनियों ने अन्ध ऋज्राश्व को आँखें दीं और अन्धे को ज्योति दी।

आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तम।
ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे।। (ऋ.१.११७.७)

इसी प्रकार जो घाव दण्ड इस्वा (वरण) और हरसा (अग्नि) से हुआ हो उसे ठीक करने का वर्णन निम्न ऋक् में मिलता है।

'यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम्'

ऋग्वेद में देवासुर संग्राम के कारण शल्यतन्त्र के ज्ञान की आवश्यकता अधिक होने के कारण उसका रूप विकसित हुआ। तद्उपरान्त शान्तिकाल आने के बाद यह ज्ञान पीछे पड़ गया।

वैदिक काल में इन्द्र के वृषणों के प्रत्यारोपण का प्रसङ्ग भी निम्न ऋक् में ध्वनित होता है।

'वृषणे ते हरी वृषणा युनज्मि' (२७.३७.६)

इसीप्रकार वैदिक काल में संधान कर्म भी किया जाता रहा है इसका भी उल्लेख है।

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः।
एवा कायस्य विच्छिन्नं स धेहि वीर्यावति।।(अथर्व.६.१३९.५)

अतः यह सर्वथा सिद्ध है कि सन्धान कर्म वेदों की मौलिक देन है। तदुपरान्त सुश्रुत ने इसे अपनाई। बाद में आधुनिक शल्य शास्त्रियों ने इसी विधि को अपनाया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अन्धत्व के निवारण के लिए भी वेदों में मन्त्र हैं।

वेदों में कटे शिर को जोड़ने की कला को प्रवर्ग्य विद्या कहते थे। इसी विद्या को अश्विनी कुमारों ने दधीचि और घोड़े के शिर को एक दूसरे पर लगाया था। (सन्दर्भ-मधुविद्या, प्रवर्ग्यविद्या मार्च १९६५ प्रियवृत शर्मा)

इससे अङ्ग संरक्षण (Organ preservation) तथा अङ्ग प्रत्यारोपण विधि (Organ transplanation) का संकेत मिलता है। कौशिक सूत्र में शस्त्र आदि से अभिघात लगने पर रुधिर प्रवाह या अस्थिभंग हो तो लाक्षाक्वाथ से परिषेक तथा लाक्षाकृत दुग्धपान का विधान है (२८.५.१४)। इसे आज के युग में Hemostatic action की संज्ञा दी गयी है।

जैमिनी ब्राह्मण (३.९४-९५) में एक आख्यान है कि किसी कुमार का शरीर रथचक्र से छिन्न हो गया था उसे ठीक कर पुनः जीवित किया गया।

वाल्मीकीयरामायण (बाल. ४९.६-१०) में इन्द्र का अण्डकोष गिर जाने पर उनमें भेड़ के अण्डकोष के प्रत्यारोपण का आख्यान है। जैमिनी ब्राह्मण (२.७७) में भी यह आख्यान है। इसी में (युद्र ७४. ५२-३३) मृतसञ्जीवनी विशल्यकरणी, सवर्णकरणी और सन्धानी महौषधियों का भी उल्लेख है।

इसी प्रकार अथर्ववेद में वैद्य को शरीर के टूटे हुए अंगों को जोड़ने का निर्देश वैसे ही किया गया है, जैसे एक बढ़ई टूटे हुए रथ के भागों को जोड़ता है।

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रो यदि वाश्मा प्रहृतो जघान।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः॥ (अ. ४.१२.७)

ऋभुः – बढ़ई

रथस्याग्डानि इव – जैसे रथ के अंगों को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संदधत्	–	जोड़ता है, वैसे ही,
कर्त्र पतित्वा	–	शस्त्र गिरकर
संशश्रे	–	(शरीर में) जो क्षत हुआ है,
यदि वा अश्मा	–	यदि पत्थर
प्रहृतः	–	गिराने से
जघान	–	(पुरुष को) चोट लगी, तो ठीक कर और तू
परुष परुः	–	पर्व से जोड़

अथर्ववेद में शस्त्रादि से आहत या पिच्छित अथवा भग्न शरीर अथवा शल्य आदि को शरीर से बाहर निकालने के सम्बन्ध में भी निर्देश मिलते हैं।

यथा - यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि।

(अ. ४.१२.२)

यत् रिष्ट	–	हिंसित हुआ है
ते रिष्टम	–	शस्त्रादि से जो तेरा शरीर रिष्ट-हिंसित हुआ है
यत् ते द्युन्तम	–	जो अग्नि से दग्धा हुआ है।
पेष्ट्रं त आत्मनि	–	जो तेरा शरीर पिस गया है, उसे जोड़ कर ठीक करें।

शत्रु द्वारा रणांगण में अंगों एवं हृदय मे भेद करने वाले शल्य को बाहर निकाल फेंकने के लिए भी निर्देश किए जाते थे। यथा –

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि। (अ.६.९०.१)

रुद्र – रुलाने वाले शत्रु ने

यां इषुम – जिस इषु को

अङ्गेभ्यो हृदयाय च– अंगों और हृदय के लिए

आस्यात् – फेंक दिया है

अद्य ता विषूचीं – आज उस पीड़ा पहुँचाने वाले (इषु को)

वयं – हम

त्वत् वि वृहामसि – तेरे हृदय और अंगों से बाहर निकालते हैं।

वेदों में इस बात का भी ज्ञान उपलब्ध है कि शरीर में सैकड़ों धमनियाँ फैली हुई हैं। उनमें बाण जैसे शल्य विद्ध होकर विष पहुँचाते हैं और उनको निर्विष करना भी आवश्यक होता है। इसी प्रकार शरीर के मर्म स्थानों पर आघात लगने से या अस्थियों के टूटने से संधान कर्म करना चाहिए। यथा – मांस से मांस, मज्जा से मज्जा, पर्व से पर्व, त्वचा से त्वचा, अस्थि से अस्थि या लोम से लोम को जोड़ा जाना आवश्यक है। इस प्रकार की शल्य क्रिया के सन्दर्भ में निम्न मन्त्रों का उल्लेख वेदों में मिलता है।

यास्ते शतं धामनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि।। (अ.६.९०.२)

जो तेरे अङ्गों में सैकड़ों धमनियाँ फैली हुई हैं, उनमें बाण प्रवेश होने से, जो विष पहुँचा है। उसे निर्विष किया जाय।

तासां सर्वासां – उन सबको हम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निर्विषाणि	–	निर्विष
ह्वयामसि	–	करते हैं।

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु॥ (अथर्व. ४.१२.३)

हे व्याधित !

ते मज्जा मज्ज्ञा सं भवतु	–	तेरी मज्जा से मज्जा मिल जाये।
परुष परुः	–	पर्व से पर्व मिल जाये।
ते मांसस्य विस्रस्तं सं रोहतु	–	तेरे मांस का विस्रस्त (फटा हुआ मांस भाग) पूरी तरह जुड़े।
सं अस्थि अपि रोहतु	–	टूटी अस्थि ठीक जुड़े।

मज्जा मज्ज्ञा धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु॥ (अथर्व.४.१२.४)

तेरी मज्जा से मज्जा जुड़े, चर्म से चर्म, अस्थि से पृथक हुआ (असृक) रुधिर, फिर अस्थि के साथ सम्बद्ध हो तथा मांस मांस के साथ जुड़े।

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम्।

(अथर्व.४.१२.५)

जैसा कि उपर्युक्त वर्णित वेद सूक्तों अथवा मन्त्रों से स्पष्ट होता है कि अश्विनीकुमारों अथवा वैदिक कालीन शल्य विशेषज्ञों को शस्त्र कर्म करने हेतु तकनीकी ज्ञान था यथा–वेधन, भेदन, स्रावण या विस्रावण, बन्धन एवं संधान कर्म आदि। इन्हीं शस्त्र कर्मों के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विधि-विधान को दिवोदास धन्वन्तरि ने अपने परम शिष्य सुश्रुत को शस्त्र-कर्म हेतु अष्ट विधान बतलाये हैं। यथा –

तच्च शस्त्र कर्माष्टविधं तद्यथा- छेद्यं भेद्यं लेख्यं।

वेध्यम् एष्यम् आहार्यं विस्राव्यं सीन्व्यमिति।। सु.सू. ५.५

१.	**छेद्यम्** –	**छेदन** –	Excision – An Act of cutting away or taking out – शरीर से किसी भाग को काटकर अलग करना।
२.	**भेद्यम्** –	**भेदन** –	Incision – A cut with a knife for the purpose of reaching upto the root of the sepsis just to cleanse it or to expose the underlying structure. चीरना
३.	**लेख्यम्** –	**लेखन** –	Scraping – खुरचना।
४.	**वेध्यम्** –	**वेधन** –	Puncturing – किसी नुकीली वस्तु से छेद करना।
५.	**एष्यम्** –	**एषण** –	Probing – शलाका डालकर अन्वेषण करना।
६.	**आहार्यम** –	**आहरण** –	Extraction – बाहर खींचकर निकालना।
७.	**विस्रान्यम्** –	**विस्रावण** –	Draining – To draw off a fluid or gas पूय आदि को बाहर निकालना।
८.	**सीव्यम्** –	**सीवन** –	Suturing – टांके लगाना।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किसी भी शस्त्र कर्म (Surgical technique) अपनाने के पूर्व शल्यज्ञ को तीन बातों का अनुकरण करना आवश्यक है। यह बात सुश्रुत संहिता के सूत्र स्थान के पञ्चम अध्याय में अग्रोपहरणीय अध्याय में स्पष्ट किया गया है, वह है त्रिविध कर्म।

त्रिविधं कर्म - पूर्वकर्म, प्रधानकर्म एवं पश्चात्कर्मेति।

आयुर्वेद में भेदन कर्म बताते हुए तीन प्रकार के विशिष्ट भेदन कर्मों का भी निर्देश दिया है।

यथा –

१. **तिर्यक** – नेत्र, भ्रू, ग्रीवा शंख, मस्तक, ओष्ठ, कक्ष आदि पर यह भेदन कर्म किये जाते थे।

२. **चन्द्रमण्डल** – हस्त एवं पाद पर यह भेदन कर्म किये जाते थे।

३. **अर्धचन्द्राकार** – गुद एवं मेढ्र पर यह कर्म किये जाते थे।

शतपोनक भगन्दर के लिए सुश्रुत ने अर्धलाङ्गलक, लांङ्गलक, सर्वतोभद्रक (वर्तुलाकार), एवं गोतीर्थक (गोस्तन के समान) बताये हैं।

शल्यतन्त्र का आधार ग्रन्थ सुश्रुत संहिता है, जिसमें व्रणितागार, व्रण के साठ उपक्रम, दग्ध, शस्त्र कर्म, उपयोगी यन्त्र शस्त्र, जलौका, सिराव्यध, अग्नि कर्म एवं क्षारकर्म आदि का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। इसी के साथ-साथ कर्ण, नासा और खण्डौष्ठ के संधान की विधि भी विस्तार से बतलायी गयी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन को अमरत्व प्रदान करने वाली शल्यतन्त्र की तकनीकी पद्धतियों की जो उद्घोषणा वेदों ने की है वह विश्व संस्कृति में नितान्त अनूठी है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Vedic Concept of Biosphere

– Dr. C. P. Trivedi

Due to the rapid industrialisation, deforestation and population-explosion the world is facing environmental crisis. Green house effect and consequent global warming, depletion of ozone layer due to the pollutants has threatened the existence of life on the earth. It has forced the Ecologists, Scientists and Politicians to talk about the Global co-operation for the conservation of nature and natural resources. Now they are talking that the world is one, environment is one, which has no boundaries, hence it is our common responsibility to safeguard the earth from ecological disaster. Sustainable development is the need of time. If we conserve and manage our natural resources properly than we may have balanced ideal environmental conditions for life on the earth. Now they have also realized the fact that common people should have basic knowledge of the environmental matters and the quest for environmental protection must be maintained at all level. The same echo is coming from the Vedic concept of Biosphere.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'Vasudhaiva Kutumbakam' i.e. the whole earth is one family (Ṛg. 1.1.91.6).

Study of Ṛgveda, which is oldest literary record of human civilisation on the earth, reveals the fact that Vedic people were fully aware of the environmental conservation and protection and were having scientific knowledge of the ecology and environmental matters. Vedic seers have described the origin and evolution of the creation as a natural phenomena and recognised the fact that in this world what is and what is to be is nature only, they have invoked nature as goddess Aditi (Rg. 1-89-10). After getting the knowledge of the principle under which universe is working in a definite order, they have described the origin and evolution of the creation from a fundamental energy under the name of Vishvakarmā or Prajāpati, which is said to embrace all the things and regarded the same as one God above all God and described the same in Puruṣa Sūkta, (Rg. 10.90). Their concept of yajña is a symbolic representation of action and interactions going on in the nature (Rg.10.150&10.90,16), which is synonym to modern concept of ecosystem, according the whole creation is a yajña in which every individual has his own importance and duty.

Looking to the fact that for maintenance of the equilibrium in nature, all the components of nature have their own importance and every-thing present on the earth is for wise utilization accordingly to develop quest for environmental conservation and protection

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

among common people. They have invoked nature as goddess Aditi and various components of nature viz. Sun, Earth, Fire, Air, Sky, Plants and Animals as God and accordingly invoked them as deities, which became the part of daily life as seen in Indian culture. This indicates their deep sense of obligations towards the things which are useful in day-to-day life, as they have also invoked plough, pressing stones etc. used in preparation of Soma Juice, music drums used in the battle-fields, rivers, mountains and forests as their deities.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक युग में धातु विज्ञान एवं खनन प्रौद्योगिकी

- डॉ. आलोक श्रोत्रिय

धातुओं की खोज और उनके प्रयोग ने मानवसभ्यता के विकास में अपूर्व योगदान दिया है। धाातु के बने औजारों तथा हथियारों ने प्रकृति के साथ मनुष्य के संघर्ष को सुगम बनाया, जिससे वह अपनी निर्वाह-व्यवस्था के स्वरूप को परिवर्तित करते हुए उत्पादन की ओर अग्रसर हुआ।

वैदिक साहित्य से हमें तद्युगीन धात्वीय प्रयोगों की जानकारी मिलती है। भारत में आर्यों को अश्व, रथ के प्रयोग की सफलता धातु-ज्ञान के कारण प्राप्त हुई। पशुचारण अर्थव्यवस्था और युद्धों के वातावरण के मध्य अस्थायी जीवन व्यतीत करते हुए भी हिन्द-आर्य धातुओं के प्रयोग से परिचित थे।

स्वर्ण का ज्ञान तो ऋग्वैदिक आर्यों को असंदिग्ध रूप से था। ऋग्वेद में सोने के लिए सुवर्ण[१] तथा हिरण्य[२] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। ऋग्वेद में हिरण्य-पिण्ड का उल्लेख है, जिससे 'निष्क' नामक

---

१. ऋग्वेद २.१५.९, ३३.९; ४.१०.६, १७.११, ३२.१९;५.६०.४; ७.९०.६

२. वही, १०.६८.३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आभूषण निर्मित होता था।[१] दान-दक्षिणा में स्वर्णांश दिए जाने के उल्लेख प्राप्य हैं। ऋग्वेद में उल्लेख है कि एक राजा ने ब्राह्मण को १०० 'निष्क' प्रदान किए।[२] एक अन्य स्थान पर एक गायक को १०० अश्व तथा १०० निष्क ग्रहण करते हुए दिखाया गया है।[३] जेंद अवेस्ता में स्वर्ण के लिए 'जरन्य' शब्द प्राप्त होता है, जो संस्कृत के 'हिरण्य' के समरूप है।[४] उत्तरवैदिक काल में सोने का उल्लेख बारम्बार मिलता है। 'आयु: हिरण्यं अमृतं हिरण्यम्' कथन से प्रकट होता है कि आर्य हिरण्य को पवित्र मानते थे, क्योंकि यह मनुष्य को अमरत्व देता था[५] अथर्ववेद तथा संहिताग्रन्थों में सोने से बने विभिन्न आभूषणों का उल्लेख है। हिरण्य से बने 'शतमान' दान-दक्षिणा में दिए जाते थे।[६] काठक संहिता में हिरण्य-कृष्णल का उल्लेख है।[७] शतमान और कृष्णल भिन्न-भिन्न तोलों के धातुखण्ड थे, जो संभवत: विनिमय में प्रयुक्त होते थे 'हिरण्यया'[८] शब्द से प्रकट होता है कि हिरण्य आर्यों की काम्य वस्तुओं में सम्मिलित था।

---

१. वही, ५.१९.३

२. वही, १.१२६.२

३. मैक्डॉनल एण्ड कीथ, वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स २ वा दिल्ली, १९५८, पृ.४५५

४. विमलचन्द्र पाण्डेय, प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, इलाहाबाद, १९९४, पृ. १४३

५. तैत्तिरीय संहिता, ५.७.१३; उक्त, पृ. १६३

६. शतपथ ब्राह्मण, ५.५.५.१६; ५.४.३.२४, २६

७. काठक संहिता, ११.४

८. ऋग्वेद, ६.६६.८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक आर्य चाँदी से परिचित थे। ऋग्वेद में रजत शब्द केवल एक बार उल्लिखित है।[१] अथर्ववेद में भी 'रजत' शब्द का प्रयोग हुआ है।[२] रजत धातु भी आभूषण निर्माण में प्रयुक्त होती थी।

ऋग्वेद में 'अयस्' नामक धातु का प्रमुखता से उल्लेख हुआ है।[३] अयस् के समीकरण के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। संस्कृत के 'अयस्' और अवेस्ता के 'अयरि:' तथा लेटिन के 'अएस' शब्दों में साम्य को देखकर स्रेडर महोदय ने यह विचार प्रकट किया था कि यह धातु न लोहा है और न काँसा, इसे विशुद्ध ताँबा समझना चाहिए, जिसका प्रयोग इण्डो-यूरोपीय लोग प्रचुर मात्रा में करते थे।[४] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यह सोना व सीसा के अतिरिक्त कोई धातु थी।[५] ऋग्वेद के उद्धरणों में 'अयस्' के लाल रंग की ओर सङ्केत है, अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि अयस ताँबे अथवा काँसे का अभिधान था।[६] इतना निश्चित है कि ऋग्वैदिक काल में 'अयस्' का प्रयोग बहुत अधिक होता था। इस धातु से कवच, शिरस्त्राण, बाण व अन्य उपकरण बनाए जाते थे। अयस् से बने आयुधों व उपकरणों के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं – असि, स्वाधिति, वर्मन, आयुध, इशु, बाण, परशु, धनुष, शाल्व, श्रिंग, कुलमल, निशंग, भ्रिस्ती, चसु, वाशी, कृति, यूर्णि, शुर्णि, व्रिक, पवि, खडग तितोन आदि।[७] युद्ध व आखेट

---

१. ऋग्वेद, ८.२५.२२

२. अथर्ववेद, ५.२.२८

३. ऋग्वेद, ४.२१.७; ५.३०.१५; ६.३.५

४. स्रेडर, प्रि लिस्टोरिक एण्टिक्विटिज़्, पृ.२१२, विमलचन्द्र पाण्डेय, पूर्वोक्त, पृ. १४३

५. शतपथ ब्राह्मण, ५.१.२.१४

६. जी.एस.पी.मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९८३, पृ.८०

७. ऋग्वेद, १.२५.३; ६.२७.६; ७.७.२५; ५.२३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के साथ ही ये उपकरण खेती की उपज बढ़ाने, जंगलों की वनस्पतियों के उपयोग और खनिज पदार्थों की प्राप्ति में सहायक थे।

उत्तर वैदिककाल में भी अयस् का व्यापक प्रयोग होता रहा। अथर्ववेद में श्याम अयस् (लोह) और लोहित अयस् (ताम्र) का उल्लेख है,[१] जिन्हें क्रमशः लोहे तथा ताँबे से समीकृत किया जा सकता है।

अन्य धातुओं में 'त्रपु' (टीन) तथा सीसा विशेषतः प्रयोग में आती थी।[२] यास्क ने हिरण्य या खनिज धातुओं में हेम, चन्द्र, रूक्म, अयस्, हिरण्य, पेश कृशन, लोह, कनक, काञ्चन, भर्म, अमृत, मरुत, दत्र और जात रूप को सम्मिलित किया है।[३]

कर्मार इस काल में धातु के कार्य करता था।[४] कर्मार कृषि निमित्त 'अभृ', 'दात्र या सृव्य' 'फाल' आदि निर्मित करता था।[५] वह धातु को अग्नि में गलाता था, अग्नि को वह चिड़ियों के पंखों की धोकनी देता था तथा उसमें सूखी लकड़ियाँ डालकर उसे प्रज्वलित रखता था। तत्पश्चात् गली हुई धातुओं से बर्तन बनाता था। बर्तन बनाने में उसे धातुओं को अत्यधिक पीटना पड़ता था।[६] अथर्ववेद में उल्लिखित है कि असुर 'आयोजालाह' के विभिन्न कार्यों में प्रवृत्त थे।[७] आयोजालाह को लौहकर्म से समीकृत किया गया है।[८] कर्मार धातु

---

१. अथर्ववेद, ९.५.४

२. वाजसनेयी संहिता, १७.२.१; अथर्ववेद, ११.३.१७; १२.२.१

३. निघण्टु, १.२; भगवानसिंह, हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, . . .

४. ऋग्वेद, १०.७२.२

५. ऋग्वेद, ८.७८.१०; १०.१०.१-३; ४.५७.९; अथर्ववेद, ७.५.६

६. ऋग्वेद, १०.७२.२; ५.९.५; ५.३०.१५; ९.१.२

७. अयोजाला असुरा मायिनोऽस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।(अथर्ववेद,१९.६६.१)

८. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९९२, पृ. ६०५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के विभिन्न अस्त्र-शस्त्र, कृषि उपकरण तथा घरेलू सामानों का निर्माण करते थे। कृषि कर्म में प्रयोज्य 'कुलिश' का निर्माण भी उसके द्वारा होता था।

वेदों में हल के माध्यम से खेत जोतने के उल्लेख हैं। ऋग्वेद में हल के लिए 'लाङ्गल' तथा सीर शब्द मिलते हैं।[१] प्रारम्भ में भूमि जोतने के लिए लकड़ी के फालों का ही प्रयोग होता था। खदीर[२] अथवा खैर का बना हल ही प्राय: प्रयोग में आता था। उत्तरवैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि हल को छः, आठ या बारह बैल मिलकर खींचते थे।[३] कदाचित लौह निर्मित होने के कारण ही ये हल भारी होते थे।

उत्तरवैदिक साहित्य में हल को 'पविरवंत्' अथवा 'पवरिवम्' कहा गया है, जिसकी व्याख्या बल्लम के समान धातु के फाल से युक्त हल के रूप में की गई है।[४] ऐसा प्रतीत होता है कि इसका अग्रभाग भाले की तरह नोकदार होता था,[५] जिससे भूमि को गहराई तक खोदा जा सकता था। हल के अतिरिक्त अन्य उपकरणों का भी

---

१. ऋग्वेद, ४.५७.४; ४.५.७-८; १०.१०१.३

२. अथर्ववेद, १०.६.२३

३. अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता, मैत्रायिणी संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण के सभी उल्लेख वैदिक इण्डेक्स, जिल्द २.४५१; रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, राजकमल, नई दिल्ली, १९९३, पृ. ९९

४. वैदिक इण्डेक्स, जिल्द १.५०९ में उद्धृत अथर्ववेद ३.१७.३; वाजसनेयी संहिता, १२.७१; तैत्तिरीय संहिता, १०.२.५.६; मैत्रायिणी संहिता२.७.१२; काठक संहिता १६; रामशरण शर्मा, पूर्वोक्त, १९९५, पृ. ९९

५. रामशरण शर्मा, "दि लेटर वैदिक फेज़ एण्ड दि पेंटेड ग्रे वेयर कल्चर", हिस्ट्री एण्ड सोसायटी, (स.) देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, कलकत्ता, १९७६, पृ. १३६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक साहित्य में उल्लेख है। कुदाल (खनित्र)[१], दारांत (दात्र[२] व सृणि[३]) आदि निश्चित ही कृषि कर्म में भूमि को खोदने एवं फसल को काटने में उपयोगी रहे होंगे। जंगल साफ करना, भवन निर्माण तथा उपकरण बनाना तद्युगीन महत्त्वपूर्ण कार्य थे। इन कार्यों को सम्पादित करने में कुल्हाड़ी का अवलम्बन लिया जाता था। इसका प्रयोग मुख्य रूप से लकड़ी काटने में होता था।[४] कुल्हाड़ी के लिए ऋग्वेद में परशु (७.१०४.२१) कुलिश (३.२.१), वृक्ण (३.८.७, १०.८७.५ स्वधिति (२.३९.७, ३.२.१०, ५.७.८, ७.३.९) तथा तेजस (६.३.५, ८.५., १५.१९) शब्द प्रयुक्त हुए हैं। वाशी[५] (ऋग्वेद १.८८.३, ५.५३.४, ५.५७.२, ८.१९.२३ आदि) शब्द एक प्रकार के हस्तकुठार का द्योतक है।[६] सायण ने वाशी को एक आयुध के रूप में उल्लिखित किया है।[७] वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे बसूला तथा इसके पाषाणयुगीन पूर्वरूप का विकास माना है।[८] इनके अतिरिक्त क्ष्णोत्र[९], तन्तु[१०], रश्मि[११],

---

१. ऋग्वेद, १.१७९.६

२. ऋग्वेद, ८.७८.१०

३. ऋग्वेद, १.५८.४

४. ऋग्वेद, ७.८३.१

५. वाशी वसुला प्रतीत होता है। इसका फाल आड़ा होता है। कुठार का फाल सीधा होता है। (संपादक)

६. रामशरण शर्मा, पूर्वोक्त, १९९५, पृ. ५

७. ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य सहित), वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९३३–५१ में ऋ.४.५३.४

८. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, वाराणसी, १९६६, पृ.७१

९. ऋग्वेद, २.३९.७

१०. वही, २.२८.५; ४.१३.४

११. वही, १.१९.८; १.२३.१२; १०.९३.९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूची[१], अशनि[२], यन्त्र[३] तन्त्र[४] आदि विभिन्न उपकरणों के प्रयोग की सूचना ऋग्वेद से मिलती है। ये उपकरण लकड़ी को चीरने तथा तराशने एवं कताई-बुनाई के कार्य में प्रयुक्त होते थे।[५] ऋग्वैदिक युग में तक्षण-तकनीक भी सुप्रचलित थी। ऋग्वेद में उल्लेख है कि धरती और आकाश को गढ़ कर बनाया जाता है (३.३८.२, १०.३१.७), धन के लिए बुद्धि का तक्षण किया जाता है (३.५४.१७), उशना अपनी काव्य शक्ति से इन्द्र के बल का तक्षण करते हैं (१.५१.१०), ऋभुगण धन का तक्षण करते हैं (६.३.८), वे लाभ के लिए सुन्दर चक्र वाले रथों का तक्षण करते हैं, बछड़े के साथ उसकी माँ का तक्षण करते हैं (१.१११.१), बिना चमड़े की गाय का निर्माण करते हैं (१.११०.८), सूर्य के स्थान का तक्षण किया जाता है (५.३३.४), इन्द्र के वज्र का तक्षण किया जाता है (१.३२.२), स्वधिति से वनस्पति का तक्षण किया जाता है (३.८.६), सरस वाणी का तक्षण किया जाता है (१.१६४.४१)।[६] इससे स्पष्ट है कि आर्थिक एवं वाणिज्यिक स्तर पर वैदिक आर्य धातुओं तथा उनसे उपकरण बनाने की तकनीक से परिचित थे।

वैदिक साहित्य के तिथि निर्धारण तथा उनके उल्लेखों के पुरातात्विक प्रयाण खोजने हेतु अनुसंधित्सु लम्बे समय से प्रयासरत हैं। पहले भारत में लोहे का प्रारम्भ उत्तरी काले ओपदार पात्रों (एन. बी. पी.) के साथ किया जाता था। क्योंकि सभी एन. बी. पी. स्थलों से

---

१. वही, २.३२.४

२. वही, १.१४३.५; ४.१६.१७; ६.६.५; ७.१०४.२०

३. ऋग्वेद, १.३४.१; १०.१४९.१

४. वही, १०.७१.९

५. भगवानसिंह पूर्वोक्त, पृ. १२४-१२६

६. वही. पृ. १२६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोहे के साक्ष्य उपलब्ध होते थे। इससे यह सिद्ध हुआ कि एन. बी. पी. के समय लौह भली-भाँति प्रचलित थे। धीरे-धीरे यह धारणा चित्रित धूसर मृदभाण्ड (पी. जी. डब्ल्यू) के साथ सम्बन्धित हुई। इस संस्कृति के कुछ आरम्भिक स्थलों जैसे हस्तिनापुर में लौह साक्ष्यों का अभाव था। कालान्तर में आलमगीरपुर से लौह उपक्रमणों के साथ-साथ इस संस्कृति के प्रमाण स्तरीकृत रूप में प्राप्त हुए और धीरे-धीरे ये साक्ष्य उत्तरप्रदेश और राजस्थान के विभिन्न स्थलों से भी प्राप्त हुए एवं गंगा का मैदानी क्षेत्र भी लौह के प्रथम प्रचलन का केन्द्र स्थापित हुआ। यह स्तर हड़प्पा तथा ऐतिहासिक काल का मध्यवर्ती माना गया। लौह अवरोध अंतरजीखेड़ा, अहिच्छत्रा, हस्तिनापुर, आलमगीरपुर, कौशांबी, बटेश्वर, खलौआ (उ. प्र.) एवं नोह, जखेड़ा, हुल्लास एवं जोधपुर से प्राप्त हुए हैं। इन उपकरणों में भाला, चाकू, कटार, बाण, खुरपी, मछली के शिकार के काँटे, चिमटा व बसूला प्राप्त हैं। इन स्थलों में कहीं-कहीं धातु अयस्क एवं इनको पिघलाने हेतु विभिन्न आकार की भट्टियाँ भी प्राप्त होती हैं, जो कि लौह उत्पादन शोधन एवं उपकरणों का निर्माण प्रदर्शित करती है। जखेड़ा (शाही) से उपकरणों की अधिक प्राप्ति तथा हुल्लास व अन्य स्थलों जैसे अतरंजीखेड़ा और हस्तिनापुर से अयस्क व भट्टियों के प्राप्त प्रमाण इस क्षेत्र में लोहे के प्रथम उत्पादन एवं लौह उपकरणों के प्रथम प्रयोग के मत की पुष्टि करते रहे हैं। नोह से प्रथम बार लोहे के कुछ टुकड़े लाल-काले मृदभाण्डों के निक्षेप से प्राप्त हुए हैं।[१]

कुरूक्षेत्र में भगवानपुरा, लुधियाना में डढ़ेरी तथा जालंधर में कटपलां और नगर जैसे क्षेत्र प्रारम्भिक वैदिक काल के संभव स्थान

---

१. राकेश प्रकाश पाण्डेय, भारतीय पुरातत्त्व म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, १९८९. पृ. २०६-२०७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मान लिए गये हैं।[१] इसका आंशिक कारण यह है कि ये पुरातत्व संबन्धी संस्कृतियाँ लगभग उसी काल की है (१५००-१००० ई.पू.)। दूसरे ये स्थान सरस्वती तथा सतलज नदियों के किनारे अवस्थित माने जाते हैं और उक्त नदियों का ऋग्वेद में मुख्य रूप से उल्लेख मिलता है। पशुओं की हड्डियों की प्राप्ति से उन लोगों की अर्थव्यवस्था भी गोधन पर आधारित प्रतीत होती है। यह भी एक तथ्य है कि इन स्थलों के लोगों को ताम्र और कांस्य की जानकारी तो थी किन्तु लोहे का उपयोग उनके द्वारा नहीं होता था। ये सब बातें वेदों से प्राप्त जानकारी से पुष्ट हो जाती हैं।

प्रायः यह स्वीकार किया जाता है कि चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति में लौह व्यवहारकर्ताओं की स्थिति मोटे तौर पर उस भौगोलिक क्षेत्र से ही मेल खाती है जो उत्तरवैदिक साहित्य में वर्णित है। उत्खनन और अनुसन्धान के फलस्वरूप उत्तरी गंगा मैदान क्षेत्र से लगभग ७०० स्थल प्रकाश में आए हैं जहाँ सबसे पहले बस्तियाँ बसी हुई थीं। इन्हें चित्रित धूसर मृदभाण्ड स्थल कहते हैं। यहाँ के लोग लोहे के हथियारों का भी प्रयोग करते थे। वैदिक ग्रन्थों तथा पुरातत्त्व के संयुक्त साक्ष्य के आधार पर यह संकेत मिलता है कि ई. पू. प्रथम सहस्राब्दी पूर्वार्द्ध में पश्चिमी उ.प्र. और पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान के संलग्न क्षेत्रों में बसने वाले लोगों का जीवन कैसा था। इन स्थानों में महत्त्वपूर्ण है पानीपत, पुराना किला (दिल्ली), मथुरा, बैराट, सोनीपत, अतरंजीखेड़ा, आलमगीरपुर, हस्तिनापुर जखेड़ा, जोधपुर और नोह। सरस्वती संभवतः इस क्षेत्र की पूर्वी सीमा थी। इन बस्तियों का उस भौतिक संस्कृति से काफी साम्य है जो वैदिक साहित्य में आवास व्यवस्था, धातुओं के व्यवहार, फसलों, पशु और बर्तनों के

---

१. जगतपति जोशी तथा मधुबाला, "लाइफ ड्यूरिंग द पीरियड ऑफ ओवरलैप ऑफ लेट हड़प्पा एण्ड पी.जी. डब्ल्यू कल्चर्स", जर्नल ऑफ द इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियण्टल आर्ड, न्यू सीरिज़, व. ९.१९७७.७८, पृ.२०-२९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ज्ञान के विषय में है।[१] लोहे की वस्तुओं वाले चित्रित धूसर मृदभाण्ड स्तरों की तिथि लगभग वही प्रतीत होती है, जो उत्तर वैदिक साहित्य की है। पश्चिमी उत्तरप्रदेश के अतरंजीखेड़ा से लोहे के प्रयोग की प्रारम्भिक तिथि १०२५ ई. पू. रेडियो कार्बनविधि से ज्ञात हुई है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के जोधपुरा से ८०० ई.पू.[२] तथा ७२० ई.पू.[३] एवं नोह से ७२५ ई.पू.[४] में चित्रित धूसर ग्ृदभाण्ड व लौह काल का प्रारम्भिक ज्ञान होता है। इससे प्रकट होता है कि गंगा के उत्तरी मैदानों तथा गंगा द्वारा विभाजित मैदानी क्षेत्र में चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति और लोहे के उपयोग की तिथि लगभग १०००-५०० ई.पू. के मध्य थी।[५]

वैदिक साहित्य में आये धमात्र (धातु पिघलाने वाले) और भस्त्रा (धोंकनी) जैसे शब्द वैदिक धातु तकनीक को अभिव्यंजित करते हैं। धोंकनी का पुरातत्त्व संबंधी प्रमाण राजस्थान के झूंझनू जिले के सुनेरी नामक स्थान से प्राप्त धोंकनियों तथा लोहे के औजारों[६] यथा तीर की नोंकों, भाले की नोंकों और विभिन्न भूरे रंग के बर्तनों के खुदाईस्थलों से प्राप्त चाकू, कुल्हाड़ी, काँटे तथा एक फाल वाले हलों से प्रदर्शित होता है। महत्त्वपूर्ण यह है कि अब औजारों से अधिक महत्ता हथियारों को मिली। जिसका अर्थ यह हुआ कि इस काल में लौह प्रौद्योगिकी का प्रभाव कृषि पर सीमित मात्रा में था। चित्रित धूसर मृदभाण्ड

---

१. कुमकुम राय, "वैदिक युग", प्राचीन भारत प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, १९९५, पृ. १२-१३

२. इण्डियन आर्क्योलॉजी-अ. रिव्यू, १९७५-७६, पृ.६२

३. रेडिया कार्बन, XX, १९७८.२३६

४. इण्डियन आर्क्योलॉजी- अरिव्यू, १९७१-७२, पृ. ८६

५. रामशरण शर्मा, पूर्वोक्त, १९९५, पृ. ९६

६. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, २६.६.१९८१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थलों से प्राप्त अवशेषों से प्रतीत होता है कि उस समय धातुकर्षण की तकनीक अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थी।[१]

लोहे के हथियारों से वैदिक लोगों ने उपरी दोआब में समाने आए अपने बचे-खुचे शत्रुओं को परास्त कर दिया होगा। ऊपरी गंगा मैदानों के जंगलों को साफ करने में लोहे की कुल्हाड़ी से काम लिया गया होगा। वैदिककाल के अंतिम दौर में लोहे का ज्ञान पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा विदेह में फैल गया था।

वैदिक साहित्य में धातुकर्म सम्बन्धी विवरण से संकेत मिलते हैं कि वे धातु को गलाने व उपकरण बनाने के कार्य से प्रचलित थे। इस कार्य के लिए वे खानों से धातु भी प्राप्त करते रहे होंगे। दक्षिण बिहार के लोहे के समृद्ध स्रोत गंगा के उपरी तटवर्ती क्षेत्र तथा सतलज के तटवर्ती क्षेत्रों के निवासियों को अज्ञात थे। ये लोग संभवतः हिमाचल प्रदेश के मंडी, पंजाब के पटियाला और उत्तरप्रदेश के कुमाऊँ पर्वतीय क्षेत्र से प्राप्त लोहे का उपयोग करते थे।[२] वैदिक साहित्य से तत्कालीन खनन पद्धति का भी आभास मिलता है। यास्क ने हिरण्य (खनिज) धातुओं में हेम, चन्द्र, रूक्म, अयस्, हिरण्य, पेश, कृशन, लोह, कनक, काञ्चन, भर्म, अमृत, मरुत, दत्र और जातरूप का उल्लेख किया। (निघण्टु १.२) लौह, कनक, काञ्चन और जातरूप का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता है। यास्क मरुत को एक धातु बताते हैं वे इसे हिरण्य के पदार्थों में सम्मिलित करते हैं। इस आधार पर कुछ विद्वान् मरुद्गणों का सम्बन्ध खनन कार्य से भी लेते हैं।[३] मरुद्गणों का नेतृत्वकर्ता इन्द्र को कहा गया है, जो सोना-चाँदी व विभिन्न मणियों के आभूषण पहनने वाला कहा गया है।[४] इन्द्र का एक पर्याय मरुत्वान भी है। इन्द्र को ऋष्टि, वज्र, दात्र, वाशी और कृति से

---

१. कुमकुम राय, पूर्वोक्त, पृ. २०-२१

२. रामशरण शर्मा, पूर्वोक्त, १९९५, पृ. ९९

३. भगवानसिंह, पूर्वोक्त, पृ. २१५

४. ऋग्वेद, १.२३.८;२.४१.१५;४.५४.५;६.५१.१५;१.२३.७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सज्जित बताया गया है। इन्हें पर्वत या फूल तोड़ते हुए दिखाया गया है। (जिहित पर्वत: गिरि: ऋ.१.३७.७). ऋग्वेद में उल्लेख है कि इनके चलने से धरती काँपती है, आकाश थर्राने लगता है, उन्हें आपथ, विपथ, अन्तस्पथ, अनुपथ से गुजरते हुए दिखाया गया है। ये रास्ते संभवत: गुफाओं या खानों से सम्बन्धित हैं। इस आधार पर मरुद्गणों को खनन में संलग्न प्रदर्शित किया गया माना जा सकता है।

ऋग्वेद में मिलने वाले वल शब्द के सम्बन्ध में मैक्डावेल ने लिखा है – यह शब्द ऋग्वेद में २४ बार आया है, इसे नियमित रूप से इन्द्र और उसके सहयोगियों विशेषत: अंगिरसों द्वारा गौओं को मुक्त कराने के सम्बन्ध में प्रयुक्त किया गया है। तैत्तिरीय संहिता (२.१.५.१) में इन्द्र को वल का बिल खोदने वाला कहा गया है। ऐसे अनेक सूक्त हैं जिनमें वल का मानवीकरण मिलता है तो कतिपय सूक्तों में मानवीकरण का अभाव है। जिन सूक्तों में वल का मानवीकरण नहीं है उनमें इसका मूल अर्थ आवरण (कवरिंग) या गुफा प्रतीत होता है। .... कहा गया है कि इन्द्र ने गायों को बाहर निकाला और वल को खोला या वल के उस विवर को खोल दिया जिसमें गायें बंद थी। पञ्चविंशब्राह्मण में असुरों की गुहा (वल) का उल्लेख आया है जो पत्थर से बन्द थी। अनेक ऋचाओं में इस शब्द का मूल या मानवीकृत भाव हो सकता है। इन्द्र के विशेषण 'वल रुज्' (वल भञ्जक) में जो वृत्रखाद के ठीक बाद आता है, बाद वाला भाव हो सकता है। मानवीकरण की ओर आशय ३.३०.१० में प्रकट होता है जिसमें वल को गोष्ठ (व्रज) कहा गया है, जिसने इन्द्र के प्रहार से बचने के लिए अपने को खोल दिया था। यहाँ मानवीकरण पूरी तरह विकसित नहीं हो पाया है। यह इन्द्र और दूसरों की उस कार्यवाही में प्रकट होता है जो वे वल पर प्रहार करते समय करते हैं, जिसे 'भिद्' (तोड़ना) और कभी-कभी 'दृ' (फाड़ना) या रुज् (खण्डित करना) तो कहा गया है, परन्तु 'हन' (मारना) नहीं जो वृत्र के मामले में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया गया है। इन उल्लेखों के आधार पर वल को कुछ विद्वानों ने खनिज भण्डारों तक पहुँचने का मार्ग बतलाया है।[१]

इससे स्पष्ट है कि धातुकर्म व धातु-खनन दृष्टि से वैदिक समाज बेहतर अवस्था में था एवं प्रकृति से संघर्ष तथा जीविका हेतु आर्यजन धातु का प्रयोग करने लगे थे।

१. द्रष्टव्य, भगवानसिंह, पूर्वोक्त, पृ. २१७-२२०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यज्ञाधृत वैदिक अर्थव्यवस्था

- डॉ. विजय पारख[१]

- विनय चाँदनीवाला[२]

भारतीय जीवन का मूल आधार असन्दिग्ध रूप से वेद है। वेद की आधारशिला पर ही भारतीय संस्कृति और लोकजीवन की प्रतिष्ठा है। सामान्य दृष्टिकोण से वेदों की उपादेयता अलौकिक तत्त्वों के रहस्यों को समझने के लिये, इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के लिये जानी जाती है, किन्तु वेदों को निश्चित सीमा में बाँधाकर नहीं देखा जा सकता। विद्वानों और भाष्यकारों ने वैदिक मन्त्रों के भिन्न-भिन्न अर्थ किये, जिनमें कहीं तो स्थूल जगत् की विशालता सामने आयी, तो कहीं सूक्ष्म जगत् की विश्वव्यापी सत्ता के दर्शन हुए। वेद के स्वरूप को जानना, उसकी विशिष्टता और सिद्धान्तों से अवगत होना प्रत्येक भारतीय का आवश्यक कर्त्तव्य है। वेद केवल अतीत का प्रवक्ता नहीं है अपितु भारतीयता के भविष्य का द्रष्टा भी है। वेदों में आद्योपान्त जीवन-शक्ति इस बात को रेखांकित करती है कि उसका मुख्य अवलम्ब जन-जीवन ही है, इसलिये जन-जीवन के सुख-दुःख, संवेदनाएँ और लोक-परम्पराओं की संगति बैठा कर ही वेदार्थ को जाना जा सकता है।

---

१. अध्यक्ष, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

२. शोध-छात्र, रतलाम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेदों की इस आर्ष परम्परा में आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख आधार यज्ञ है। यज्ञ कर्म की संस्कृति को स्थापित मान्यता यजुर्वेद से ही मिली। यज्ञ का लिखित स्वरूप जो आज हमारे सामने है, वह अथ से इति तक विनियोग की नींव पर खड़ा है। वैदिक युग में व्यापार का केन्द्र बिन्दु यज्ञ ही है, इसलिये यज्ञ सापेक्ष अर्थव्यवस्था का अध्ययन समीचीन प्रतीत होता है।

अश्वमेध, राजसूय, पुरुषमेध, दर्शपूर्णमास, अग्निष्टोम ऐसे दीर्घकालीन और प्रतिष्ठापूर्ण यज्ञ हैं, जिसके आधार पर लोगों की जीविका निर्भर हुई और स्वदेशी व्यापार ने एक आन्दोलन का स्वरूप ग्रहण किया। यज्ञ को लक्ष्य में रखकर पाक यज्ञ, हविर्यज्ञ और सोम यज्ञ संस्थाएँ व्यापक रूप से स्थापित हुई, जो इस प्रकार है–

पाकयज्ञ संस्था– औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिश्राद्ध, श्रवण और शूलगत।

हविर्यज्ञ संस्था– अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ पशुबन्ध, सौत्रामणि, पिण्ड पितृयज्ञ।

सोमयज्ञ संस्था– अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम।

ये यज्ञ संस्थाएँ पूरी तरह बाजार केन्द्रित थीं और स्थानीय लोगों के आर्थिक विकास का प्रमुख आधार थीं। यज्ञों में प्रयुक्त दधि, घृत, यव, अपूर्व, गौद्रव्य, पुरोडाश का प्रबन्ध विनिमय से होता था। यज्ञ में प्रचलित असंख्य पदार्थों का क्रय-विक्रय बाजार से होता था। इनमें अधिकांश पात्र काष्ठ-निर्मित पात्र थे। सर्वप्रथम इन काष्ठनिर्मित पात्रों के निर्माण में उचित विनियोग किया जाता था। निर्माण के फलस्वरूप तत्कालीन बाजार में उनका विक्रय करना सम्भव हो पाता था तथा प्रमुख विनिमय प्रणाली से धन-उपार्जन की प्रणाली प्रारम्भ हो जाती थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काष्ठनिर्मित पात्र निम्न प्रकार हैं-

आज्यस्थाली, चरुस्थाली, प्रणीतापात्र, पुरोडाश पात्र, ब्रह्मासन, यजमानस्यपात्री, पत्नीपात्री, कृष्णाजिन, स्रुव, उपभृतस्रुक, ध्रुवास्रुक, पुष्करस्रुक, अग्निहोत्र हवणी, वेककन्तस्रुव, उलूखल, मूसल, शूर्प, शम्या, स्पय, शतापदान, उपवेक्ष, कूर्च, दृषत्, उपल, अरणि, उत्तरारणि, प्रमन्थ, नेत्रम्, हर्विधानपात्री, प्राशित्रहरण, चमस, इडापात्री, यजमान आसन, इत्यादि।

यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले अधिकांश साधनों के काष्ठनिर्मित होने के कारण काष्ठकार का व्यवसाय महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वेदों में काष्ठकार को रथकार कहा गया है। यज्ञ राष्ट्र की अवधारणा के विकास का समय है। 'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो'.....प्रभृति वैदिक राष्ट्र गीत यज्ञ मे गाये जाने वाले सुमधुर मन्त्रों का समागम है।

यह राष्ट्रगीत यज्ञों में सामूहिक रूप से गाया जाता था और यह समग्र कल्याण की प्रार्थना से भरा हुआ था।

इस राष्ट्रगीत में समस्त वर्णों के अभ्युदय की कामना के साथ गाय, बैल और अश्व के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। वीर और सभ्य युवक और शीलवती नारी के सामाजिक महत्त्व को रेखांकित किया गया है। समृद्धिपूर्ण जीवन के लिये वर्षा और भरपूर फसल के परस्पर सम्बन्ध को दर्शाया गया है और सबसे अन्त में योग और क्षेम की बात कहकर राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास का आधार अर्थ-संचय और आर्थिक सुरक्षा बताकर राष्ट्रीय विकास की आर्थिक सुस्पष्टता पर बल दिया गया है।

यजुर्वेदकालीन आर्थिक विचारधाराएँ धन पर एकाधिकार के विरुद्ध आर्थिक नियोजन का ऐसा धार्मिक आधार खोजती परिलक्षित होती हैं, जिसे सामान्य जन सहजता से स्वीकार कर मानव-समाज के सर्वांगीण विकास की ओर प्रवृत्त हो सके।

यजुर्वेद में तेन **त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्** में त्यागपूर्वक उपभोग का जो आदर्श खड़ा किया गया है, वह व्यक्तिगत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कल्याण के साथ-साथ सामूहिक कल्याण को ध्यान में रखकर की गयी धर्ममूलक स्थापना है। **कस्य स्विद्धनम्**- धन किसका है? यज्ञ में दी जाने वाली आहुति ने धन को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय विसर्जन होने योग्य बना दिया है।

संख्याओं का विस्तार यजुर्वेद के यज्ञों में स्पष्ट दिखाई देता है। वाजसनेयी संहिता में एक, दश, सहस्र, दशसहस्र, नियुत (एक लाख), प्रयुत (दस लाख), अर्बुद (एक करोड़), न्यर्बुद (दस करोड़), समुद्र (एक अरब), मध्य (दस अरब), अन्त (खरब), परार्ध (दस खरब) का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। एक आहुति में दीर्घ जीवन की अभिलाषा के लिये **शरदः शतम्** और **जिजीविषेच्छतं समाः** के उल्लेख बताते हैं कि सौ की संख्या पूर्णवाचक होकर समृद्धि और कल्याण की सूचक थी।

यज्ञ में अन्नों के दान का बहुत महत्त्व था। उपनिषदों में कहा गया है– **अन्नं बहुकुर्वीत तद् व्रतम्**। अन्न-उत्पादन को बढ़ाओ, वह एक व्रत है। **अन्नं न परिचक्षीत** अन्न की अवहेलना न करें। ये ऐसे उपनिषद् वाक्य हैं, जिन्हें तत्कालीन अर्थशास्त्र की रीढ़ कहा जा सकता है।

यज्ञ को मनुष्य-जीवन की सत्ता में बनाये रखने के लिये कर्म को आधार बनाया गया है। यज्ञ केवल मनुष्य का नहीं, अपितु वनस्पति, पशु-पक्षी और अचेतन वस्तुओं के भी कल्याण के लिये क्रियान्वयन चाहता है।

स नः पशस्व शं गवं यह ऋचा पशुओं की रोग निवृत्ति के लिये कामना करती है तथा **मधुमान्नो वनस्पतिः मधुमान्अस्तु सूर्यः** में वनस्पति और सूर्य को लेकर कल्याण की भावना मिलती है और विश्व पर्यावरण को सुन्दर बनाने का प्रयास अविलम्ब होता है।

यज्ञों में सबसे बड़ा यज्ञ अश्वमेध यज्ञ है जो वर्षभर चलता था। उसमें सभी व्यवसायियों को भरपूर काम मिलता था और यह आजीविका का सबसे बड़ा साधन था। इन व्यवसायों में एक बात

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ध्यान देने योग्य है, वह है **कल्पिन् प्रबन्ध** कल्पनाकारी और **अधिकल्पिन् अतिरिक्त प्रबन्ध** कल्पनाकारी का व्यवसाय। तत्कालीन अर्थव्यवस्था में प्रबन्धन को महत्त्व दिया जाना, इस बात का प्रमाण है कि यज्ञ जैसे अति महत्त्वपूर्ण आयोजन बिना आर्थिक प्रबन्धन के सफल नहीं होते थे।

यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के ३०वें अध्याय में विभिन्न आजीविका वाले लोगों का यज्ञ के सन्दर्भ में उल्लेख है। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं के उत्पादन के आधार पर जातिगत वैशिष्ट्य वाली आजीविकाओं की सूची निम्न प्रकार है, जो अर्थव्यवस्था के केन्द्र-बिन्दु में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है–

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तस्कर, वीरहण (शूर), अयोगव (खान से लोहा निकालने वाला), नर्तक, शैलूष (नट), सभाचर, रथकार, सूत्रधार, कौलाल (कुम्भकार), कर्मार (लोहार), मणिकर (खनकार, स्वर्णवणिक), वप्ता (बीज बोने वाला), इषुकार (बाण बनाने वाला), धनुकार (धनुष बनाने वाले), ज्याकार (ज्यानिर्माण करने वाले), रज्जुसर्ज (रस्सी बनाने वाले), व्याघ्र (शिकारी), खनिक, निषाद, द्यूतकारी (जुआ खेलाने वाला), अकितव (द्यूत का अड्डा चलाने वाला), बिदलकारी (बाँस के बर्तन बनाने वाले), कंटकीकारी (पत्तों को एकत्रित कर काँटें आदि से पत्तल-दोने बनाने वाले), पेशस्करी (वेश बनाकर जीविका चलाने वाले), हस्तिप (गजपाल), अश्वप (अश्वपाल), गोपाल, अविपाल (मेषीपाल), अजपाल (बकरी पालने वाले), कीलाल (सुरा बनाने वाले), रजक, राजयित्री (वस्त्र रंगने वाली), नापित, परिस्कन्द (कूड़ा बुहारने वाले), अयस्ताप (लोहा तपाने वाले), निसर (तप्त लोहे को पीटने वाले), आंजनीकारी (नेत्रों में अंजन लगाने का व्यवसाय करने वाले), कोशकारी (करवाल आदि कोष का निर्माण करने वाले), चर्मकार धैवर (धीवर), शैष्कल (मत्स्यजीवी), कैवर्त, हिरण्यकार (स्वर्णकार), वाणिज् (वाणिज्य के व्यवसायी), कल्पिन् (प्रबन्ध कल्पनाकारी), गोव्यच्छ (गाय हाँकने वाला), भिक्षमाण (भीख माँगने वाले),

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चरकाचार्य (वैद्यकशास्त्र का अध्ययन करने वाले), तूणवद्य (बंशी बजाकर जीविका चलाने वाले), शंख बजाने वाले, वनप (वनपाल), दावप (दावाग्नि या गृहाग्नि को बुझाने के लिये उसके संवाद का प्रचार करने के लिए नगाड़ा पीटने वाला), गणक (दैवज्ञ, दिन-नक्षत्र-वार-तिथि-ज्ञाता), वीणावादी मृदंग बजाने वाले, बंशी बजाने वाला, वंशनर्तिन (वंशी पर नाचने वाले)।

उपर्युक्त जातिगत कार्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से यज्ञों के प्रति अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे और इनके द्वारा वस्तुओं का सामूहिक उत्पादन ही वैदिक अर्थव्यवस्था के बाजार का आधार-स्तम्भ था।

वेदों में यज्ञों के माध्यम से देवों को प्रसन्न किया जाता था। देवताओं के लिये किया गया आध्यात्मिक कार्य वास्तविक रूप में सामाजिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिये, आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की गयी विनम्र माँग है। इन्द्र उत्तम वर्षा का प्रतीक है, इसलिये उसका आह्वान कर प्रकृति को श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न किया जाता था। अश्विदेव उत्तम अन्न को प्रदान करने वाले देवता हैं। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिये अग्नि को स्मरण किया जाता था। वरुण देवता मानव-जीवन के प्राणों की रक्षा करते हैं, अतः उनका आह्वान किया जाता था। समस्त देवताओं के नाम की आहुति देकर सामाजिक कल्याण की भावना को जाग्रत करने का प्रयास किया जाता था।

अतः यज्ञ अधिकतम जनसंख्या के अधिकतम सुख की और सुगठित अर्थव्यवस्था को कायम रखने के लिये महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

वर्तमान अर्थव्यवस्था वैदिक अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित एक ऐसा मॉडल तैयार कर सकती है, जिसमें केन्द्रीय आर्थिक प्रणाली को स्थापित किया जा सके, ताकि सामाजिक कल्याण की दिशा में नयी सर्जनात्मक अर्थव्यवस्था का निर्माण हो।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक युग में रसायन

– डॉ. सीताराम दुबे

चिन्तनशील, तर्क-प्रवण समाज में आज हम प्रत्येक पदार्थ को प्रायोगिक धरातल पर परखना चाहते हैं। ऐसे में विज्ञान का महत्त्व-वर्द्धन स्वाभाविक ही है। प्रत्येक देश अपनी संस्कृति के उषःकाल में विज्ञान के भिन्न-भिन्न विषयों के सूत्र-बीज की गवेषणा के प्रति सन्नद्ध है। विज्ञान के ऐसे विषयों में, दैनन्दिन प्रयोग के कारण, निश्चय ही रसायन-विज्ञान का अपना विशिष्ट स्थान है। यद्यपि रसायन-विज्ञान के आधुनिक स्वरूप के अध्ययन का प्रारम्भ तो लगभग १८वीं शती के मध्य में हुआ, परन्तु इसके सूत्र-बीज सभ्यता के प्रस्फुटन काल से ही दिखाई देते हैं। आज भी रासायनिक क्रियाओं और विधियों के कारण-नियमों को जाने अथवा अनजाने ही स्वीकार किया गया प्रतीत होता है। प्रारम्भ में तो शैल-पत्रों में प्रयुक्त रङ्गों, बर्तन-भाण्डों के निर्माण और मिट्टी अथवा धातु के पात्रों या आभरण एवं अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण तक ही सीमित थीं, किन्तु कालान्तर में औषधि एवं दीर्घायुष्य के लिये भी इनका प्रयोग किया जाने लगा। मिश्री कीमिया (Chemia) से व्युत्पन्न अंग्रेजी के केमिस्ट्री (Chemistry) का हिन्दी भाषान्तर रसायन (शास्त्र) का भारतीय सन्दर्भ में प्रथम प्रयोग चरकसंहिता में मिलता है। जहाँ पर यह दीर्घ जीवन, स्मरण-शक्ति एवं स्वास्थ्यवर्धक औषधियों के लिये प्रयुक्त है। अतः यह कहना युक्तियुक्त होगा कि भारत में रसायन चरक के साथ ही विकसित हुआ और नागार्जुन ने इसे रससिद्धि के रूप में परिनिष्ठित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रूप दिया, परन्तु वैदिक साहित्य के भी भारतीय रसायन के सूत्र-बीजों की बहुलता है। पूर्व वैदिक साहित्य हो अथवा उत्तर वैदिक साहित्य, उसमें आज के रसायन विज्ञान में परिगणित औद्योगिक रसायन (Applied Chemistry), अमरत्व-प्राप्ति सम्बन्धी रसायन (Alchemy) तथा भैषज्य रसायन (Istro Chemistry) आदि सबके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सन्दर्भ दिखाई देते हैं और इन्हीं वैदिक सन्दर्भों के माध्यम से यहाँ 'वैदिक युग में रसायन' की विवेचना का प्रयास होगा। यद्यपि इन तीनों को एकदूसरे से सर्वथा असम्पृक्त कर पाना सरल सम्भव नहीं, क्योंकि स्वर्ण एवं अनेक अन्य धातुएँ भी अमरता अथवा स्वास्थ्यवर्धक औषधियों के रूप में व्यवहृत की जाती रहीं और इसी प्रकार अनेक औषधीय वृक्षों की काष्ठ, छाल, पत्तियों का धातु के शोधनादि के लिये प्रयोग दिखाई देता है।

औद्योगिक रसायन

वैदिक साहित्य में संगृहीत देवताओं की स्तुति-विषयक ऋचाओं, उनके वस्त्राभरण, आयुध, यज्ञ, दान-दक्षिणा के प्रसंग उद्धृत पात्रों प्रकरणों से उस युग में प्रचलित विविध धातुओं, उनके प्राप्त करने की तकनीक, निर्माण-पद्धति तथा निर्माताओं आदि का विवरण मिलता है; जिनसे उस युग के समृद्ध रासायनिक ज्ञान का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

अद्यतन साहित्य ऋग्वेद में मात्र हिरण्य, रजत (दुर्लभ) एवं अयस् का, जबकि उत्तर वैदिक साहित्य में वाजसनेयी संहिता में छह धातुओं – स्वर्ण, अयस्, श्याम, लोह, सीसा एवं त्रपु का उल्लेख है।[१] यद्यपि श्याम एवं लोह को अयस् धातु के भेद के रूप में ताम्र और लौह धातु से समीकृत करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

रुद्र को सूर्य के समान प्रकाशमान स्वर्णिमज्योतिर्पुंज कहा गया है। उसके द्वारा अपनी अंगुलियों में सोने की अँगूठी, कानों में बाली,

---

१. ऋग्वेद XVIII, १३.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गले में स्वर्ण-ग्रैवेयक धारण करने का उल्लेख है।[१] मरुतों को अपने सिर पर स्वर्ण-निर्मित शिरस्त्राण और वक्षस्थल पर जंजीर पहने दिखाया गया है।[२] अनेक देवताओं के दाँत, आँख, जिह्वा आदि के स्वर्ण-निर्मित होने में विश्वास व्यक्त किया गया है।[३] इस प्रकार सोने की बाली, अँगूठी, शिस्त्राण तथा सोम रखने के पात्र के रूप में स्वर्ण-कलश के उल्लेख से वैदिक जनों के स्वर्ण से सुपरिचय का भान होता है। घोड़े की साज, स्वर्णिम वस्त्र, स्वर्ण जटितशक्ति आदि से इसकी पुष्टि होती है।[४] देवताओं के लिये प्रयुक्त 'सर्वोत्तम स्वर्ण' जैसी उपाधि से उनके द्वारा अच्छे-बुरे स्वर्ण में भेद करने का प्रभास और उसकी जानकारी की सूचना मिलती है।[५] सोने का काम करने वाले को स्वर्णकार एवं हिरण्यकार कहते थे।[६] वह अपने कार्य में दक्ष तथा निष्णात होता था। नदी तथा खदानों से स्वर्ण प्राप्त कर वह इस प्रकार के वस्त्राभरण तथा पात्रोपकरणों का निर्माण करता था।[७] यद्यपि स्वर्ण धातु के शुद्धीकरण का ऋग्वेद में मात्र संकेत है, किन्तु तैत्तिरीय

---

१. ऋग्वेद IX, ४३; I, १२२, १४; VII, ५६.१३; I १६६, ९; I ६४, १०, V, ५४, ११, II ३३, ९ आदि.

२. ऋग्वेद V, ५४, ११.

३. ऋग्वेद, क्रमशः I, ३५, ८; VI, ७१, ३ - V, २, ३ आदि

४. ऋग्वेद, I, १६२, १६, VIII, १, १३२ - V, ५५, ६, IX, ७१, ६, IX, ७५, ३,

५. बनर्जी, मनीन्द्रनाथ, ऑन मेटल्स एण्ड मेटलर्जी इन ऐण्श्येण्ट इण्डिया; इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, जिल्द ८, अंक ४, दिसम्बर, १९२७, पृ. ७९३.

६. तैत्तिरीय ब्राह्मण, III, ४. १४. १ आदि.

७. ऋग्वेद, १, ११७, ५; अथर्ववेद १२, १, ६,२, ६, ४४; तुलनीय बनर्जी, मणीन्द्रनाथ, इण्डियन, हिस्टारिकल क्वार्टली, जिल्द ३, ऑन मेटल्स एण्ड मेटलर्जी इन ऐण्श्येण्ट इण्डियन, पृ. १२६ और आगे.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संहिता[१] तथा शतपथ ब्राह्मण[२] में इसका सुस्पष्ट विवरण हैं। खदानों से प्राप्त कच्ची धातु से स्वर्ण को विभिन्न प्रविधियों के द्वारा अलग किया जाता था।[३] जो रसायन के उच्च तकनीकी ज्ञान के बिना सम्भव नहीं था। गलाने के पात्र में डालकर धमन आदि माध्यमों से 'स्वर्ण-पिण्ड' बनाया जाता था, पुनः उससे मनचाहे वस्त्राभरण-पात्रोपकरण का निर्माण किया जाता था।

रजत धातु का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में तो नहीं ही मिलता, उत्तर वैदिक साहित्य में भी अल्पज्ञात है। अतः उद्‌गमस्थल तथा तकनीकी सूचना का ज्ञान नहीं मिलता।. सम्भवतः इसका महत्त्वपूर्ण कारण नदी के रेत में न होना था। हो.सकता है कि मात्र पर्वतों पर उपलब्ध होती रही हो।[४]

अयस् एवं अयस्-निर्मित सूई से लेकर फावड़ा, बाण से लेकर तलवार, शिरस्त्राण तथा कलशादि पात्र में वैदिक साहित्य में शताधिक उल्लेख हैं। वैसे यह धातु लोहे, काँसे अथवा ताँबे में से किस धातु-विशेष के रूप में पहचानी जाये, अन्तिम रूप से आज कह पाना सम्भव नहीं है। पुरातात्त्विक साक्ष्यों के प्रकाश में ही इसकी पुष्टि का प्रयास किया जाना सम्भव है। वैदिक साहित्य में अयस्-निर्मित ढक्कन युक्त 'चरु' नामक एक ऐसे पात्र का उल्लेख मिलता है, जिसके अंकुश के माध्यम से अग्नि पर लटकाये जाने की व्यवस्था थी[५], जिसे भोजन बनाने के पात्र के रूप में समीकृत किया जा सकता है। विप्पला के उदाहरण को यदि यथावत् स्वीकार किया जाये तो ऐसा लगता है कि उस युग में अंग-प्रत्यारोपण भी सम्भव था।

---

१. I, ७, १.

२. II, १, १, ५.

३. शतपथ ब्राह्मण, I, ३.५; तुलनीय, II, २, ३,२८आदि.

४. बनर्जी, मणीन्द्रनाथ, वही, जिल्द ३, पृ. १२८-२९.

५. ऋग्वेद, I, ७, ६; मैत्रायनी संहिता, I, ४, ४, ९ आदि.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निश्चय ही इस प्रकार की निर्मितियाँ बिना अयस् के उच्च रासायनिक तकनीकी ज्ञान के सम्भव नहीं था। संयोगवश वैदिक साहित्य के सामान्य अध्ययन से धात्वाश्म को गलाकर, शुद्ध कर अयस्-पिण्ड तैयार करने की तकनीक पर भी प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर अयस् के गलाने का स्पष्ट संकेत है, वहाँ ऋचाकार कच्ची धातु की तरह गलाकर शुद्धीकरण की कामना करता है। एक अन्य स्थल पर कच्ची धातु को गलाकर शुद्ध किये जाने की तरह सम्पूर्ण मानवता के शुद्धीकरण की कामना की गयी है।[१] औषिधियुक्त लकड़ी के ढेर से आग बनाकर, पक्षी के पंखों की हवा से उसकी लपटों को तेज करते हुए धातु को गलाने और उसे चमकाने के लिये पत्थर पर रगड़ने की बात कही गयी है।[२] निश्चय ही ये सन्दर्भ अश्मयुक्त धातु को गलाकर 'अयस्' प्राप्त करने तथा पुनः उससे विविध प्रकार के उपकरण बनाने की ओर संकेत करते हैं। यजुर्वेद में लोहे के स्पष्ट उल्लेख के साथ-साथ लोहे की भट्टी का भी विवरण है। वहाँ कहा गया है कि वह लोहे के खनिज को लकड़ी, कोयला आदि के साथ तपाकर धातु तैयार करता है।[३] ऋग्वेद एवं शतपथब्राह्मण के कतिपय सन्दर्भों में अयस् का कच्ची धातु 'अश्मन' से तथा स्वर्ण का अयस् से धमित होना कहा गया है। अयस् का कार्य करने वाले को 'धमक' या 'धमातृ' एवं कर्मकार कहा जाता था। अथर्ववेद के एक स्थल पर असुरों को अयस् को विविध रूपों में परिणत करने की कला में दक्ष कहा गया है। जिन्हें क्रमशः टीन एवं सीसा के रूप में समीकृत किया जा सकता है। टीन को अल्प ताप में ही द्रवणशील कहा गया है। सीसा का जुलाहे के बाट तथा 'ताबीज' के रूप में विवरण मिलता है।[४] अथर्ववेद में तो

---

१. ऋग्वेद, IV, २, १७; IX, ११२, २; V, ७२, २१ आदि.

२. ऋग्वेद, IX, 112, 2.

३. यजुर्वेद, १८, १३ तथा ३०, १४-'मन्यवे अयस्तापम्।'

४. अथर्ववेद, XI, ३, ८ तथा XII, २, १, १९.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सीसा को लेकर 'दधत्पं सीसम्' नाम से एक पूरा सूक्त ही है।[१] निश्चय ही इन विविध प्रकार की धातुओं और उनसे वस्त्राभरण, अस्त्र-शस्त्र, पात्रोपकरण का निर्माण बिना धात्विक रासायनिक ज्ञान के सम्भव नहीं था, जिनके प्रकाश में वैदिक युग में उच्च धात्विक रासायनिक तकनीक का सहज ही अनुमान किया जा सकता है और उन्हीं का क्रमशः आज के धात्विक रसायन के रूप में विकास हुआ। यद्यपि कालान्तर में उस पर पाश्चात्य धात्विक रासायनिक तकनीक के प्रभाव से सर्वथा निषेध नहीं किया जा सकता।

वैदिक साहित्य में अनेक व्यवसायियों का उल्लेख है, जिनमें कुछ व्यवसाय तो बिना रासायनिक प्रक्रिया ज्ञान के सम्भव ही नहीं थे। यथा-- सुराकरण, पेशिता (प्रतिमा बनाने वाला), रजयित्रि (रंगरेजिन, कपड़ा रंगने वाली महिला, ऐसी स्थिति में रंगरेज का होना सहज स्वाभाविक है), अंजनीकारी (अंजन बनाने वाली महिला),[२] हिरण्यकार, धमातृ आदि। पात्र चाहे वे मिट्टी के हों अथवा लोहे के हों, इनके बारे में भी यही बात कही जा सकती है।

अमरत्व-प्राप्ति तथा औषधीय रसायन का तो वैदिक युग में कार्मिक ज्ञान दिखाई देत. है। औषधीय रसायन और किण्व रसायन के विकास को वस्तुतः वैदिक काल की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है। वैदिक साहित्य में जादू-टोने, आसुरी शक्तियों, मृत्यु, पागलपन आदि को दूर करने तथा नारी को वश में करने विषयक तन्त्र-मन्त्र का तो उल्लेख है ही, साथ ही औषधियों का भी विवरण है। ऋग्वेद में दशम् मण्डल में तो औषधि विषयक एक पूर्ण सूक्त ही है। रोगोपचार आदि के लिये की गयी वैदिक ऋचाओं को 'भैषज्यानी' कही जा सकती है। कालान्तर में आयुष्यानी पद के लिये रसायन का

---

१. वही, ।, १६. २-४.

२. सत्यप्रकाश, प्राचीन भारत में रसायन का विकास, १९६०, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, पृ. १०-१४.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रयोग होने लगा।[१] यद्यपि अमरत्व और दीर्घायु प्राप्त करने सम्बन्धी प्रयोग वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो गये थे, तथापि इसे खनिजों के साथ नहीं जोड़ा गया था, परन्तु पेड़-पौधों पर आधारित प्रयोगों के विस्तृत उल्लेख हैं।[२] इस सम्बन्ध में 'सोम' पौधे का उल्लेख किया जा सकता है, जिसके रस के पान से ऋचाकारों में दीर्घायु एवं अमरत्व-प्राप्ति का अटूट विश्वास था।[३] यह पवित्र तथा स्वर्गिक पेय के रूप में अभिहित था।[४] हिमालय की मूजवंत पहाड़ी पर पाये जाने वाले इस वृक्ष में स्वाद में मीठे तथा रुचिकर पेय से मनुष्य दीर्घायु तथा अमरत्व को प्राप्त कर जाता था।[५] यद्यपि यह कौन-सी वनस्पति थी, इसके बारे में मतभेद है। आर. जी. वैसन तथा नीधम[६] ने इसे 'अयनिता मस्कैरिया' अथवा 'पलाई एगेरिक' नामक कवक प्रजाति का कहा है, जबकि भगवानसिंह ईसे गन्ने[७] तथा जे. सी. राय भाँग से समीकृत करने के पक्षधर हैं। वेद तथा अवेस्ता के आधार पर जे. एम. उनवाला आदि ने इसे ब्राह्मी वर्ग की वनस्पति स्वीकार किया है।

---

१. भटनागर, प्रारम्भिक रसायन का इतिहास, १९७२, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, पृ. ३६.

२. शर्मा, विजयलक्ष्मी, अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय विज्ञान, १९९०, दिल्ली, पृ. १७३.

३. ऋग्वेद, VI, ४७, ३; VII, ४८, १२; IX, ९६, १५; IX, २४, ७, IX, ११०, ८.

४. ऋग्वेद, I, ९, १&२; III, ४१ ५,; III, ४६, ५; III, ४७, १&४; VIII, ४८, ३; VIII, ४८, ११, IX, ४८, ३ तथा I, १०८, ४; IV, ३५, ६; IX, ४७,१.

५. वैसन, आर. जी., सोम डिवाइन मुसरुम ऑफ इयार्टिलिटी, १९६२, न्यूयार्क;नीकम, साइन्स एण्ड सिविलाइजेशन इन चाइना, कैम्ब्रिज, १९७४, पृ. ११६ एवं १२५.

६. सिंह, भगवान, आइडेण्टिफिकेशन ऑफ सोम, पुरातत्त्व, नं. १२.

७. शर्मा, विजयलक्ष्मी, वही, पृ. १७७ एवं १८३.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक वाङ्मय में स्वर्ण का भी अमरत्व के साथ संयोग दिखाई देता है। यद्यपि तत्सम्बन्धी उद्धरणों को खनिजों पर आधारित 'अलकेमी' से जोड़ना तो निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता, परन्तु सम्भव है कि वर्णित सन्दर्भ अमरत्व एवं दीर्घायुष्य के सूत्रबीज हों।[१] अथर्ववेद में कहा गया है कि स्वर्ण धारण करने से मनुष्य की आयु लम्बी होती है और जिसे अग्नि से मृत्यु का भय हो, उसे अग्नि में स्वर्ण की आहुति देनी चाहिये।[२] शतपथब्राह्मण में भी अनेक स्थलों पर अमरत्व सम्बन्धी परिकल्पना और दैवीस्वर्ण का उल्लेख एक साथ प्राप्त होता है।[३]

दूध से घी बनाने की पद्धति की खोज रसायन के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अन्न आदि से खमीर उठाकर मादक द्रव्यों का निर्माण 'किण्व रसायन' की ऐतिहासिक घटना है।[४] अथर्ववेद में ईख का स्पष्ट उल्लेख है।[५] इसी प्रकार यजुर्वेद में आये अन्य सन्दर्भ तत्कालीन मानव के रसायन से सुपरिचय का भान कराता है। इमें करम्भ (चावन या अन्न का मांड), मासर (भुने हुए जौ के आटे को मट्ठे में पकाकर बना पेय), नग्नहू (सुरा बनाने की औषधि), अभिक्षा (उबले-फटे दूध के मिश्रण अथवा गरम दूध में दही डालने पर बचा घन भाग), वाजिन (फटे दूध को छानने पर बचा पानी) आदि का विशेष स्थान है। दूध से दही, मट्ठा, अभिक्षा, वाजिन, घृत आदि बनाना तो सामान्य-सी बात थी।

---

१. १९, २६, १-४.

२. ३, ७, १, ३; ३, ३, २, २; ३, ३, ३, ६; ३, ५, ३, १४.५.३, ५, १५; ७, ४, १, १५ आदि

३. सत्यप्रकाश, वही, पृ. १०

४. १, ३४, ५.

५. सत्यप्रकाश, वही, पृ. ९; पृ. ६४ और आगे.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पत्ते, पुष्प, पुटक गुठली आदि के अर्कों का उल्लेख भी करता है। 'अपामार्ग' नामक पौधे का जुलाब अथवा मूत्रवर्धक होने का विवरण है।

निश्चय ही ये प्रसंग वैदिक जनों के रसायन से परिचय का भान कराते हैं। यद्यपि यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि इन सभी सन्दर्भों को आज के रसायन-विज्ञान की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता, किन्तु इनमें आधुनिक रसायन-विज्ञान और रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया का सन्दर्भ बीज अवश्य ढूँढा जा सकता है। साथ ही, प्रसंगवश यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि आज वैदिक एवं हड़प्पा जन को सामानान्तर मानने पर बल दिया जा रहा है। कतिपय विद्वानों ने तो इन्हें एक ही समय के दो भिन्न संस्कृति अथवा एक ही संस्कृति के भेदोपभेद के रूप में स्वीकार किया है; अतः ऐसी स्थिति में वैदिक रासायनिक सन्दर्भों के संगतिकरण के लिये हड़प्पन सभ्यता के पुरास्थलों से प्राप्त पुरावशेषों का उपयोग करना आवश्यक है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Environmental Consciousness in Atharvaveda

– *Dr. (Smt.) Kamalesh Sharma*

I

The Vedas have valuable instructions about the purification of ecological environment. The wise Rishis of India advocated following the rules of nature for the peace and prosperity of the mankind. The splendid Bhūmi-sūkta of Atharvaveda is the first document in the world for the environmental consciousness.

Vedic people were aware towards environmental balance of nature. Such type of instances are scattered in the Vedas. Natural powers like earth, water, air and fire have greater importance in their prayers. It is clear with this Mantra—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Heaven, Earth and Vāyu
Have given me this wide space
and Agni, Sūrya, Apas and all gods
have together endowed me with the intellect.

(A.V., 12.1.53.)

If natural powers are polluted there direct effect would be on human being. Vedic Rishis were aware with this fact. That is why they prescribed certain methods to purer the environment.

The idea of Ṛta was prominent in Vedic life. Ṛta is its cosmic sense stands for the love of nature and in its social sense is the fundamental moral law, which maintains order and symmetry in the life style of people. In Ṛgveda, aesthetic sense is also attached with Ṛta. Happiness can be gained by nature's beauty and benignity —

Sweet blows the breeze for me who lives by Ṛta
river pours for him sweets.[1]

Man is asked in the Atharvaveda to enjoy good fortune by observing Ṛta. Affinity towards natural law is hidden in the concept of Ṛta.

Vedic people were in deep love with their motherland. There are so many hymns is prayer of earth in Bhūmi Sūkta. Some are as under —

---

1. R.V., 1.90.6.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Earth which has many heights, and slopes and the unconfined plain that bind men with earth that bears plants of various healing powers may she spread wide for us and thrive.

(A.V.,12.2.1.)

It is clear with the above Mantra that Vedic people were familiar with the medicinal qualities of the plants. Earth is the supporter of forests, trees and plants as said in A.V., 12.1.57—

As a horse scatters dust, so did earth.
Since she was born,
scatter the people who dwelt on the land,
and she joyously sped on, the world's protectors,
supporter of forest, trees and plants.

Ancient Indians loved trees and its plantation. According to Indian tradition, planting a tree is equivalent to begetting a son.

Earth in which lie the sea,
the river and other waters,
in which food and cornfields have come to be
in which live all that breathes and that moves
may she confer on us the finest of her yield.

(A.V., 12.1.13.)

In the opinion of Vedic people earth is not only the home of human beings but for other creatures also—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।

(A.V.,12.1.5.)

Earth's gifts to man are just like the gifts of a mother to her son —

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः।

(A.V., 12.1.10.)

It is clear that Vedic people were in emotional bondage with their land. The poetry of the fragrance of the earth is not derived from the Ṛgveda. Its is a priceless contribution of the Atharvaveda to Vedic people's sentimental inclination towards the earth is also a symbol of environment consciousness

In the following Mantra the importance is given to the pure water —

Pure may the waters flow far our bodies cleansing.
To those who trespass against us
We offer an unpleasant welcome.
I cleanse myself, O earth, with that which purifies.

(A.V., 12.1.30)

This Mantra expresses Vedic man's wish to have an unpolluted environment around him, the useful and life giving liquid. Polluting water of any river and pond was

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

considered to be a crime. Pure water is essential to maintain the life of man[1]

In the Vedas fire is given more importance. Fire is a messenger of gods and a friend of air. It does not keep the oblations thrown into it. It scattered all these among the earth, water, sky etc. The smoke of Yajna goes up into space and is combined with the clouds. In Bhūmi Sūkta there are mantras on fire —

There lies the fire within the earth,
and in plants,
and waters carry it,
the fire is in stone.

There is a fire deep within men,
a fire in the kine,
and a fire in horses.

(A.V., 12.1.19.)

The same fire that burns in the heavens;
the mid air belongs to this Fire Divine,
Men kindle this fire that bears the oblation
and loves the method butter.

(A.V., 12.1.20.)

1. Dr. Kamalesh Sharma, Polity in Atharvaveda, Shodhak, Vol.23, p.10.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Vedic Rishis performed Yajnas with the indentation of Mantras. This was the Vedic method for the purification of environment. Material thrown into the fire of the havana will eradicate fuel smell and make air pure. Yajnas will kill germs in the air and make air fresh and clear far the breathing. "All this shows that ancient books of India emphasising upon the performance of Yajnas of maintaining a pollution less environment."[1]

Thus, we can say that Vedic people loved ecological surroundings and natural powers and they were also aware towards green earth, fresh air and pure water. They long far permanent peace, health and happiness to mankind. In modern time more and more plantations to trees, storage of clean water and performance of Yajnas should be practices. We should try to follow the ways of Vedas for fighting with the threat of polluted environment. Then all the living creatures will be able to lead a healthy and prosperous life.

---

1. B.R. Sharma, Aryan Heritage, April, 1991, p.23.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

VEDIC PARTICLE PHYSICS

An Introduction

Devarshi Dinesh Trivedi.

The Science is eternal. It cannot be split into the Vedic and the Western, or the ancient and the modern. The word science has, infect, been derived from the Vedic word the **Sānkhya**, which is the name of the book of particle physics based on the Vedas. The pronunciation of the word science without the last letter **e** is a lot similar to that of Sankhya, pronounced in a different dialect only. This clearly indicates that the word science has been derived from the word Saankyo only.

The Vedas are the books of knowledge and sciences only. They describe them in the poetic and symbolic way; the terminology would naturally be different to that prevailing in the modern time. Once you are well acquainted with the method of the creation of the terms and their application, the scenario is different. You find an ocean of all knowledge, all sciences, and all pleasures spread in front of you. The amount you can borrow depends on your capacity to do that. Here is a humble

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

presentation of my efforts, in brief, for your perusal and valued opinion.

I. The Standard Mode[1]— All the known elementary particles (except the gravitation demanded by theoretical considerations) are provisionally described today by a theory that has come to be called the standard model. ... It seems to be in excellent agreement with observation, although there are a few features that have yet not been confirmed be experiments. Physicists hoped that those would be tested (along with exciting newer ideas that goes beyond the standard model.) at the high-energy particle accelerator that was partially completed in Texas. (The Super conducting Super Collider or SSC). But that was scrapped by the US House of Representatives in a conspicuous set back for human civilization. ... ... the standard model brought a good deal of simplicity out of bewildering variety of phenomenon. However there are a number of reasons why it cannot be the ultimate theory of the elementary particles.

1. First, the forces have very similar forms and cry out for univication by means of a theory in which they appear as different manifestation of the same underlying interaction; yet, in the standard model they are treated as different from one another and not unified (contrary to claims that are sometimes made).

---

1. The Quark & the Jaguar. P124. By Murray Gell-Mann. P124

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

2. Second, the model in not simple enough, it contains sixty kinds of elementary particles and a number of interactions among them, but no explanation for all that variety,
3. Third, the model contains more than a dozen arbitrary constants describing those interactions (including the constants that yields the various masses of the different kinds of particles); it is hard to accept as fundamental a theory in which so many important numbers are incalculable in principle.
4. Finally, gravitation is not included, and any attempt to incorporate it in a straightforward manner leads to disastrous difficulties: the results of calculations of physical quantities turn out to include infinite corrections, rendering them meaning less.

II. So-called Grand Unified Theories[1]— Elementary particle theorists have tried to cope with these defects in two ways. The more straightforward way involves generalizing the standard model to what some have called a grand unified theory, although there is a little justification for the name. Let us see what such a generalization does about the four problems listed.

1. First, the interaction in the standard model that requires unification are infect seen to be unified, along with new ones, at very high energies with a natural descriptions of how, at the lower energies of

---

1. The Quark & the Jaguar. P 126. by Murray Gell Mann.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

today's experiments, the inter actions appear to be separate.

2. Second, all the elementary particles of the theory are grouped into just a few sets, with a member of each set closely related; thus a good deal of simplification is achieved, even though the number of kind of particles is substantially increased (with some of the new ones having masses so high that they cannot be observed in the foreseeable future).

3. Third, the theory contains more arbitrary constants than the standard model, still incalculable in principle.

4. Finally, gravitation is still omitted and it is just as difficult as before to incorporate it. Such a theory may possibly be valid over a wide range of energies. The third and fourth points, however, makes it clear that it is not credible as the fundamental theory of the elementary particles.

III. Super string Theory[1] — A new type of theory called Super string Theory seems to have the right properties for accomplishing the unification. In particular, heterotic super string theory is the first viable candidate ever for the unified Quantum field theory of all the elementary particles and their interactions.

Super string Theory grew out of an idea called the bootstrap principle, after the old saw about the man who

---

1. The Quark & the Jaguar. P 128. By Murray Gell Mann.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

could pull himself up by his own bootstraps. The notion was that a set of elementary particles could be treated as if composed in a self consistent manner of combinations of those same particles would serve as constituents, all particles (even the fermions in a certain sense) would serve as the quanta for the force fields, binding the constituents together.

Particle Physicist frit; of Capra, who is a strong advocate of the S-matrix theory and its bootstraps approach says –

S-matrix theory[1]— The most impressive developments in the particle physics, perhaps, have taken place recently in S-matrix theory and the bootstrap approach, which does not accept any fundamental entities but tries to understand nature entirely through its self-consistency. I consider the bootstrap philosophy as the culmination of current scientific thinking, and have also emphasized that it is the one that comes closest to the Eastern thought, both in its general philosophy and its specific picture of matter. At the same time, it is a very difficult approach to physics, which is at present, pursued by a small minority of physicists.

The bootstrap hypothesis[2] stated explicitly that the world couldn't be understood as an assemblage of entities, which cannot be analyzed further. In the new worldview,

---

1. Tao of Physics p. 316. By Fritjof Capra.

2. The same book, p.286.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

the universe is seen as a dynamic web of interrelated events. None of the properties of any part of the web is fundamental; they follow from the properties of the other parts, and the overall consistency of their mutual interrelations determines the structure of the entire web.

Thus the bootstrap philosophy represents the culmination (i.e. reaching the highest point of development) of a view of nature that arose in the quantum theory with the realization of an essential and a universal interrelationship, acquired its dynamic content in relativity theory, and was formulated in terms of reaction probabilities in S-matrix theory. At the same time this view of nature came ever closer to the Eastern worldview and is now in harmony with Eastern thought, both in its general philosophy and its specific picture of matter.

The fact that the S-matrix exhibits singularities[1] existence of event is a consequence of the causality principle, but the location of the singularities is not determined by it. The values of energy and momentum at which the particles can be created are different for different reaction channels and depend on the masses and other properties of the created particles. The locations of the singularities thus reflect the properties of these particles, and since all the hadrons can be created in particle reactions, the singularities of S-matrix mirror all the patterns and symmetries of hadrons.

---

1. The same book, p.276.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

The central aim of S-matrix theory is, therefore, to derive singularity structure of the S-matrix from the general principles (stated earlier in the book). Up to now, it has not been possible to construct a mathematical model which satisfy all three principles and it may well be that they are sufficient to determine all the properties of S-matrix— and thus all the properties of hadrons-uniquely.[1]

(The mathematical model, satisfying all the three general principles, and known as GVMC has been constructed at our VSR Center, in December 1997, pointing out different properties being created at different energy levels and different channels, which are termed as Riches and stems there. The total number ingredients in the particles meant of them which could, probably, be created can be calculated with in seconds, even if this number may be as large as containing four, five or even more figures.)

THE VAIDIC PARTICLE PHYSICS —

The Ancient, Advance Science Of Creation, Reveals The Truth In The Language And Terminology Of Modern Science.

We have seen that the bootstrap approach of the S-matrix and the super string theory is the right step of the modern particle physics in right direction. Capra gladly

---

1. The same book, the same page.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

admits and rightly mentions it at a number of places that this view of nature is closer to the Eastern worldview and is in harmony with Eastern thought, both in its general philosophy and its specific picture of matter. This is an important comment of a particle physicist who tried to study and understand the Eastern science of creation, which is called particle physics by the modern physicists. Though, he could catch a glimpse of it only, even then, it made him so confident and proud of, to mention it gladly, in his book.

The Rigveda, explicitly, declares the matter as self-consistent in the chapter known as the **Naasadeeya sookta**[1]. This chapter elaborates the conditions prevailing just before starting the creation of the universe. The second mantra clearly mentions that the filled in stuff, what so ever, that was in energy forms which, than was lying stagnant (आनीद् अवातम्, Aaneed awaatam), and it was self-consistent (स्वधया, Swadhayaa), too. So the self-consistency is the second property of the matter that the Vedas profess since the moment of their manifestation, the first, it being in the energy form. Therefore, as regards these two points, the bootstrap theory is in line with the Rigveda.

This self-consistent stuff is called **Aditi** by the Vedas while Saankhya has named it as **prakriti**. The Sankyo (1/61) describes the prakriti as the combination of

---

1. Rigveda 10/129

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

three forces and call them by the names **Satwa, Rajah and Tamas**.[1]

The Prakriti is a joint manifestation of these three inseparable basic forces; all of them being equal in magnitudes and self-consistent, as such, not created by any body, the Vedas say. One thing here should be understood well. The prakriti is not the assemblage of three outer forces, brought from somewhere and pasted or welded together. They should be better understood from the example of the inseparable North and South Poles of a magnate.

Let us, now, look into some of the sub-atomic events as the particle physicists see.

Electron is a particle with negative electric charge. Its antiparticle is positron, which is a particle identical to an electron, as regards its mass and number of charges are concerned. Both are supposed to bear unit number of electric charge which are opposite in nature, they say. Both of these, on collision, annihilate completely leaving some high-energy photon particles. The photons are regarded as neutral particles. Question is, 'where do the positive and negative electric charges go, in this phenomenon? Are they destroyed'? The answer is 'no, they are conserved, as per law of conservation of energy', because, the total charges present in the system undergoing a reaction never change. The answer is true; no energy is destroyed during the phenomenon. It is

---

1. सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।। सांख्य. १.६१।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

preserved as (+) 1 + (-) 1 charges. Mathematically, this term (+) 1 + (-) 1 makes it equal to zero, or (+) 1 + (-) 1 = 0

This again means that charges are destroyed, which is a false statement. So there are two possible explanations for this,

1. The (+) and (-) signs are not the mathematical signs;
2. They are not opposite to one another, though they are different in nature

In the study of particle physics we find, another variety of particles also; they are known as neutral particles and are supposed to have neutral, (0) electric charge. Here also, this (0) sign, obviously, is not a mathematical sign.

After, all the above discussions our original question remains unanswered, where do the charges go, where they are conserved and why they are not manifested? Moreover, the neutral, high-energy photons, when they interact to transform themselves into a pair of an electron and a positron, they get back their charges. Where from do they get their charges back?

There; again two possible answers we find.

1. They borrow the charges from the surroundings. If they do so then some of the surrounding particle should have lost their charges, but no surrounding particle is seen to loose any charge. Therefore, this cannot be the true answer.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

2. The photon particles inhere the charges and they have the capacity to hide the charges. In other words, the photons bear all the three charges within them selves.

We work on the analogy of the inherence of charges by the photon; but at this stage we do not know if the photon particles are the ultimate particles; or they have any structure. In both cases, we suppose that, the photons do inhere the three charges, in them. By doing so a question arises. Is that the reason for the photons being their own anti-particles? We shall try to find the right answer for the question, later.

II

Here we find that the particle physics and the Vedas, both have one thing in common. The Vedas say that the Prakriti is the joint manifestation of the three inseparable basic forces; all equal in magnitudes. This combination of three self-created forces is self-consistent. While on the other side we find the particle physics points out that photons inhere the three charges within. It means, both says the same thing, the prakriti is **the fundamental particle, which contains the three inseparable forces or charges within it self.**

Lot of doubts and questions arose with this conclusion. We enlist them and then try to sort them out one by one.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

1. Prakriti, the Vedas say, is in energy from, while here it has been mentioned to be as particle.
2. Photons are the ultimate particles, or they have any structure, this is not yet known, so at this stage we cannot take them as the ultimate particles,
3. For the particle physics part, the bootstrap theory has been taken as the basis of our considerations. This theory rejects the existence of any entity of any ultimate particle. They see the universe as a dynamic web of interrelated events. None of the properties of any part of this web is fundamental.

Following is the point wise reply of the above questionnaires arose with the above conclusion.

The Rigveda described the prakriti as **Aaneed** meaning the energy, this is true as referred to above; but in the mantra following to the above, the Veda calls that energy-like-stuff which cannot be defined or explained properly (apraketam), as salilam.[1] As defined in the **Unaadi Sootra** 1/55[2], it means the **fluid**. Salila is generally taken as a synonym for water, but it, actually, means fluid. Water is salila this is true, but salila does not mean water.

The Oxford dictionary defines fluid as this. "Fluid consists of the particles that move freely among themselves and yield to the slightest pressure." Fluid does

---

1. Rigveda 10/129/3
2. सलिलं सल जाता औणादिक इळच्।। उणादि सूत्र १.५५।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

not necessarily mean only liquids, but according to this definition the gases are also an example of the fluid. Moreover the particles of dry and fine sand can also be taken as a crude example of fluid. It is a general term meaning a group of particles with the least cohesion among themselves.

Therefore, with the word salilam in the mantra 10/129/3 of the Rigveda the meaning of the portion of the mantra becomes 'that mysterious energy was then being manifested in the particle form also'.

Therefore, we can say that, the prakriti has dual behavior, individually it acts as particle, and collectively, it acts as energy. There is nothing strange in this statement, because we know that individually the electrons are particle but collectively when they are flowing, they are manifested as a current of electrical energy.

So the prakriti, individually acts as a particle, but collectively, it manifests it self as energy. This is true.

Now, as regards photons, this is true that at this stage we do not know if photon bears any structure or otherwise they are the fundamental matter particles. However, it makes no difference, because we know that they inhere the three charges, and if they were not the fundamental particles then its ingredients would be the fundamental particle. As such we consider those very ingredient fundamental particles to inhere the three charges.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Thirdly, the bootstraps theory pretends to reject the existence of any fundamental entity, but infect it also advocate the presence of fundamental entity that is energy. "In S-matrix theory there are no distinct entities and no basic building blocks; there is only a flow of energy showing certain well defined patterns,[1]

Here Capra seems to have been confused a bit. He, in spite of all his denial, accepts the presence of the basic entity, and that is in energy form. Like Vedic Physicists and many others, he also feels, energy to be the material cause of the creations of the subsequent particles in the form of a chain or a series or a string, which are created at different levels of a perennial chain action and are hierarchic[2]. Each particle transcends its junior one, thus producing a group of particles having similar physiology and behavior and thus forming cluster of particles, there by.

It is this perennial chain action, which has made the GVMC or the Great **Vedic Matter** Chain to be the magnificent Vedic S-matrix, which produces the mathematical formulation, and the diagrammatic demonstration of the probabilities of endless particle creation, spreading in the spectrum fashion. Therefore, the production of the S-matrix is an important event.

---

1. Tao of Physics, p.318, by Fritjof Capra
2. The Holographic Paradigm and other paradoxes p.159, by Ken Wilber

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

III

We have seen, the energy flowing in the well-defined patterns as the cause of the particle creation. We also know that the matter or the prakriti, when collectively flowing, manifests itself in energy form, and individually or singularly, in particle form. Here the subject of our detailed study is the particle form of the energy.

The particle of prakriti or matter is the subtlest thing in the universe. There cannot exist any subtler and minuter thing other than a matter particle. It is subtler than any known subtlest particle; it being the basic and the unity, every other thing is larger than prakriti. Therefore, it may not be possible to see to such a tiny and subtle particle through any device in the lab. In that case its existence could only be predicted and verified, theoretically. If, suppose, this tiniest particle could be seen or verified, experimentally, sometimes later in future, even then, it might require to undergo thro lots of theories and hypotheses. So we would also take their help and formulate a hypothesis, based on facts.

At this stage, when we are working on a new concept, where the Vedas are being translated, understood and interpreted in the language known to the modern particle physicists, essentially, we have to adopt the scientific method to study a subject of advance science.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

As a first step to follow this method, some empirical data relating to the subject from the reference books and / or mathematical logic would be collected and attempts will be made to generalize these, in the form of simple statements or mathematical expressions.

The next step in the application of this method would be to put forward a hypothesis with the view to work on the scientific law and mathematical logic and give a complete explanation of the observed phenomenon to reach the known facts.

In the third step we may find some strange results, which are mathematically and logically correct. In addition, we may find the solution of many complex problems, which were critically bothering the generations of the scientists and remained unsolved.

On accomplishing the second stage successfully our hypothesis, automatically becomes the theory and the successful third step makes it law.

On the other hand, if we do not reach the known facts on working on the hypothesis, then it may need a revision or it may go to trash.

Therefore, now here come our efforts.

The matter particle is very subtle, we know, but how much subtle! There must be some dimensions to it. May be it is 10^{-30} cm or 10^{-40} or may be it is 10^{-50} cm size. It may have still smaller dimensions, what so ever. Now if we draw its diagram at the scale of 10^{-50} cm to a cm, then

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

the figure will be of 1 cm size. Therefore, its sketch can be drawn, if we could postulate its geometry.

Now, comes the first supposition of the hypothesis, on the mathematical ground. Let the geometry of the particle be spherical, due to minimization of the surface area.

How it would look like, I wonder! It would be some ball like thing consisting of three different, but not opposite type of forces, for the reasons stated above. All the three forces stand out as complementary forces, though diverse in nature. They all are conjointly attributed the same function and represent a perfect trio in cosmic working.

They being equal in magnitude, are represented by three equal portion of the ball like thing. For their distinct identification we award different colors to them, viz. white color to Satwa or positive charge, red to Rajah or negative charge, and black color to Tamas or neutral charge, is provided.

These three powers or charges, cannot be separated from each other, nor can be destroyed, individually or collectively. Presence of one of them establishes the presence of the other two also, may or may not be in manifested form. These three charges have got three

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

different and dissimilar properties of attraction, repulsion and neutrality[1]

In between the group of Satwa, Rajah, and Tamas, the property of attraction is acting, in between the pairs of two Satwas, or two Rajas' there is the property of repulsion is active, but two Tamas' neither attract nor repel one another; so the property of neutrality acts in between them.

This can be represented like this-

[+, -], [+, 0], [-, 0] Attraction

[+, +], [-, -] Repulsion

[0, 0] Neutral

These forces are divergent. It means the line of action of these three active forces is acting from center towards the circumferences. The intensity of the forces fades down as moving away from the surface of the sphere is the particle, and the portion fading or the diminishing from the surface to outward, is the sweep or the effective areas of the charges or the forces of the particle, and are known as their respective electric fields.

These fields, which are active around the particle act like strings to pull and tie up with the dissimilar part of the other particles, and make there by, a bond or combination of particles. In Sanskrit **guna** means the

---

1. प्रीति अप्रीति विशादाद्यैः गुणानां अन्यो — अन्यं वैधर्म्यम्।। सांख्य. १.१२७ ।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

strings. Therefore, the term guna is rightly used by Saankhya to represent the fields as the properties of the forces. 'Property', is another synonym of the word guna in Sanskrit. (So the sootra no. 1/127 means 'the attraction, repulsion and the neutrality are produced due to diversity in the property of fields.)

These fields act like sweep also. On the arrival of similar fields of different particles in the close vicinity of one another, they are pushed aside or pushed away, causing the particle to revolve or to move. This movement continues until the dissimilar forces come in closer vicinity and make a joint to form a combination.

According to the Vedas and the Saankhya, the matter, before starting the creation work, was known as Prakriti, and was an inactive particle. That stage is known as its samyawastha, which means the balanced state of the forces. In this state the three 'basic integrals', the constituent forces were **convergent** i.e. they acted in the center, leaving the surface neutral and the particle inactive. The three ingredient forces were jointly termed as **Rudra**.[1]

This Rudra slept in side the ancient cave, i.e. the particle, then it was asked to wake up, and take up the creation work, The Rudra woke-up, the convergent forces became divergent, the inertness of the balanced state got shattered and the inactive **Prakriti** was transformed into active **Mahat** or Mahān, which means the great, being

---

1. Rigveda 1.43.1.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

the great cause of the creation. The Saankhya narrates the whole story in one sootra[1].

We shall, here after, call the active particle of matter as Mahat or the parmanu, which means the ultimate particle. We concentrate on the study of this active matter particle or Mahat parmanu only.

In the light of above facts we postulate our hypothesis as follows.

1. The ultimate matter has dual characteristics, it individually acts as a particle and collectively as energy.
2. This matter, called Mahat, is the joint manifestation of three inseparable, immortal and self-consistent forces, in particle form.
3. It is the tiniest and the subtlest entity.
4. The geometry of the particle is spherical.
5. All the three forces are equal in magnitude and occupy the equal portion of the particle, by volume.
6. Though all the three forces are diverse, they are not opposite to each other. Moreover they standout to be the complimentary forces.
7. The three forces are known as the Satwa, the Rajah, and the Tamas, and are represented by the three

---

1. स्त्वरजस्तपसां साम्यावस्था: प्रकृति: प्रकृतेर्महान् ....।। सांख्य १.६१ ।।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

electric charges, viz. positive (+), negative (-), and neutral (0), respectively.

8. Each one of the three forces of a particle feels the attraction for the other two dissimilar forces of another particle and thus it makes a bond with any one of the two dissimilar forces of other particle.

9. The similar force of all particles, repel each other, except the Tamas or the neutral (0) charge, which is neither attracted nor repelled by another similar charge.

10. The Tamas or the neutral charges of all particles feel the force of attraction only; they never feel repulsion any time. Moreover, the Tamas' have equal affinity for the rest of the two charges of the other particles.

11. The (+,-) bond of the combination is stronger then the other two bonds namely (+,0) or (-,0) bonds, both the charges making the bond being active charges. In rest of the two combinations one of the charges present is (0), which is neutral, thus making the bond weaker.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वैदिक सन्दर्भ

- डॉ. रवीन्द्र भारद्वाज
- डॉ. अशोक त्रिवेदी

भारतीय वैदिक साहित्य में आर्यों ने जिस विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्वरूप की परिकल्पना की, वह लगभग ११ वही–१२ वीं शती तक विकास के विभिन्न सोपानों के साथ अस्तित्व में रही।

ऋग्वेदिक जन की विज्ञान और प्रौद्योगिकी की अवधारणा का आधार ऋत् और पञ्चभूत पर आधृत है। इसके लिए ऋत् और पञ्चभूत के विषय में जानना आवश्यक है।

१. ऋत् (प्राकृतिक नियम)

ऋग्वेदिक विचार ऋत् (प्राकृतिक नियम) को विज्ञान का आधार मानते हैं। वैदिक सिद्ध पुरुषों ने यह माना कि सम्पूर्ण जगत्, विश्व, त्रिभुवन, वैदिक देवता, आदि सभी एक प्राकृतिक नियम अथवा ऋत् के अनुसार संचालित हैं। उनका मानना था कि नदियों का बहना, दिन या रात का होना या अन्य किसी प्राकृतिक घटना का घटित होना सभी इस 'ऋत्' से सम्बद्ध हैं। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऋत् के द्वारा न केवल मानवीय जगत् वरंन् जागतिक विश्व भी उससे संचालित है।

ऋग्वेदीय जनों का यही 'ऋत्' के प्रति विश्वास और महत्त्व वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अवलम्बन है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पञ्चभूत

दूसरा एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है – पञ्चभूत। ऋग्वेद में इसका क्रमिक विकास प्रारम्भ होता है। उपनिषदों के प्रारम्भिक काल में यह विचार पूर्णरूप ग्रहण कर लेता है। सम्पूर्ण प्रकृति में पञ्चभूत – पृथ्वी, आप, तेजस, वायु और आकाश एक दूसरे नियमगत आधारों पर सम्बद्ध हैं यही पञ्चभूत विश्व की संरचना को प्रकट करते हैं। पदार्थ की संरचना में यही पञ्चभूत प्रमुख हैं। भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में भी पञ्चभूत प्रमुख हैं। भारतीय औषधीय ग्रन्थों में पञ्चभूत वर्णित हैं। यही कार्बनिक और अकार्बनिक संसार की रचना करता है। मानव शरीर पञ्चभूत एवं आत्मा का संयुग्मन है। सुश्रुत ने मानव शरीर में पञ्चभूत एवं छः रसों की चर्चा की है। इस प्रकार यह पञ्चभूत सिद्धान्त भारतीय विज्ञान के अन्तःस्वरूप और तथ्यों को स्वतः स्पष्ट करता है।

२. ज्योतिष विद्या/खगोल विद्या (Astronomy)

मनुष्य जबसे इस पृथ्वी पर वर्तमान मानव सदृश रूप में आया तब से उसकी रुचि आकाश के रहस्यों को जानने की रही है। वैदिक साहित्य में खगोलविद्या सम्बन्धी विचार गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, और वसिष्ठ ने प्रकट किए हैं। अत्रि का नाम संहिता और ब्राह्मणों में ग्रहण सम्बन्धी विचारों के सन्दर्भ में एकाधिक बार हुआ है।

सामवेद और उसके ब्राह्मण ग्रन्थों की मूल रुचि खगोलीय पञ्चाङ्ग में होने से सूर्य सम्बन्धी गणना पर विशेष ध्यान दिया। ऋग्वेद में २७ या २८ नक्षत्रों की गणना मिलती है। अथर्ववेद में पहली बार राहु का ग्रहण के साथ सम्बन्ध बतलाया गया। यहीं २८ वें नक्षत्र के रूप में अभिजीत को शामिल किया गया। वैदिक साहित्य में सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, ग्रह, सूर्य का मार्ग, सूर्य ग्रहण, उसकी गति, वार्षिक गति, उत्तरायण व दक्षिणायन आदि की चर्चा भी उपलब्ध है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऋग्वेद के अनुसार रात्रि में चन्द्रमा सबसे महत्त्वपूर्ण है। उसे चन्द्र, चन्द्रमस और सोम कहा है। ऋग्वेद[१] में चन्द्रमा के लिए कहा गया है– 'वह स्वयं प्रकाशित नहीं है वरन् यह चमक-दमक सूर्य के कारण है।

यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ऋग्वेद में पृथ्वी को गोल कहा हो। अथर्ववेद[२] में दो गोलार्द्धों का उल्लेख पृथ्वी के आकार के लिए हुआ है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में ग्रहों की चर्चा नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वैदिक जन ग्रहों के विषय में अनभिज्ञ थे। वेबर महोदय के अनुसार तैत्तिरीयआरण्यक और मैत्रायणीउपनिषद् में पहली बार ग्रहों का उल्लेख हुआ है। इसके विपरीत ओल्डेनबर्ग और लुडविग महोदय के अनुसार ऋग्वेद[३] में सात आदित्यों का उल्लेख है। इनके अनुसार ये सूर्य, चन्द्रमा एवं पाँच ग्रह हैं।

सात ग्रहों में सूर्य, चन्द्रमा के साथ राहु-केतु को भी जोड़ा गया। बाद में इसी राहु-केतु ग्रहण सम्बन्धी सिद्धान्त में आया। अथर्ववेद और छान्दोग्योपनिषद् में राहु का ग्रह के रूप में उल्लेख हुआ है किन्तु ज्योतिषीय दृष्टि से याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेखित हुआ। अथर्ववेद में केतु का विवरण पुच्छल तारा के रूप में हुआ है।

वैदिक साहित्य में तारे, नक्षत्र-विद्या और राशि-चक्र के विषय में भी जानकारी मिलती है। जैसा कि हम जानते हैं भारतीय खगोलशास्त्रियों ने कभी भी तारों के केटलॉग बनाने में रुचि नहीं ली। जिस तरह से बेबिलोन या चीन के खगोलशास्त्रियों ने ली। ऋग्वेद[४] की कई ऋचाओं में नक्षत्रों का उल्लेख हुआ है। कुछ स्थानों पर सूर्य की

---

१. ऋग्वेद; IX. ७१.९

२. अथर्ववेद; XI. ५.८-११

३. ऋग्वेद; IX. ११४. ३; X. ५५. ४; १. १६२. १८

४. ऋग्वेद; I. ५०. २; VII. ८६, १

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गणना तारों के साथ की गई।[१] यहीं यह तथ्य भी प्रकट होता है कि नक्षत्र-मण्डल की धुरी सोम है।[२]

समय-चक्र विभाजन के विविध पक्ष और आयाम हमें वैदिक साहित्य में पर्याप्त रूप में मिलते हैं। दिन और रात की स्थिति का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार दिन का आरम्भ सूर्योदय से तथा अन्त सूर्यास्त से होता है। अथर्ववेद के अनुसार चमकीले अर्द्ध भाग को दिन कहते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण ने दिन को पाँच भागों में विभाजित किया है।

सभी प्राचीन सभ्यताओं में माह की गणना का आधार चन्द्रमा एवं वर्ष की गणना सूर्य के आधार पर की जाती थी।

वैदिक काल में माह की अवधारणा चन्द्रकलाओं के घटने-बढ़ने से अस्तित्व में आई। ऋग्वेद में चन्द्रमा के लिए कहा है कि वह वर्ष के स्वरूप को निर्धारित करता है।[३] ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में कहा गया है कि एक वर्ष में ३६० दिन, १२ माह एवं मास में ३० दिन होते हैं।

कृष्ण यजुर्वेद के अनुसार छः ऋतुएँ होती हैं। ऋग्वेद में तेरह माह या अधिक मास का भी सन्दर्भ मिलता है।[४] अथर्ववेद में इसका विस्तार दिखाई देता है।

वैदिक पंचाङ्ग के विषय में विस्तार से जानकारी निदान सूत्र और लाट्यायन श्रौतसूत्र में दी गई है। इनमें विभिन्न प्रकार के वर्ष, माह आदि की गणना सौर-चन्द्रमा की गणना के आधार पर की गई है तथा इनका आपसी समन्वय भी किया गया है।

---

१. ऋग्वेद; III. ५४.१९

२. ऋग्वेद; X. ८५.२

३. ऋग्वेद; X. ८५, ५

४. ऋग्वेद; I. २५, ८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३. गणित

वैदिक साहित्य में संहिता, ब्राह्मण और वेदाङ्ग में वैदिक जन के गणित और उसमें उनकी प्रवीणता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वेदाङ्ग में कल्पसूत्र और ज्योतिष में गणना, राशि-विद्या की चर्चा है। सनतकुमार जब विभिन्न विषयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए नारद से चर्चा करते हैं तब वे गणित और ज्योतिष का भी उल्लेख करते हैं। वैदिक गणित के लिए कल्पसूत्र एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। श्रौतसूत्र में अग्निहोत्र के लिए गणितीय निर्देश दिए गए हैं। शुल्बसूत्र जो कि श्रौतसूत्र का एक भाग है, इसमें ज्यामितीय निरूपण (Geometrical Proposition) और उससे सम्बन्धित समस्याएँ, रेखीय चित्रण (Rectilinear Figures) वर्ग, वृत्त, अंकगणितीय और बीजगणितीय हल दिए गए हैं। ये श्रौतसूत्र यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित हैं। बोधायन शुल्बसूत्र प्राचीन एवं मूल्यवान कार्य है। इसमें ५२५ सूत्रों को तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है। मानव शुल्बसूत्र, आपस्तम्भशुल्बसूत्र और कात्यायनशुल्बसूत्र में पर्याप्त गणितीय उल्लेख हैं। कात्यायन शुल्बसूत्र में परिमेय त्रिभुज (Rational Triangle) और पायथागोरस प्रमेय सामान्य रूप में दिया गया है। वैदिक जनों ने शुल्बसूत्रों का उपयोग मकान बनाने, ईंटों की गणना तथा आकार बनाने आदि में किया।

अंकगणित

अंकों के विषय में वैदिक जनों का ज्ञान अद्भुत था। यजुर्वेदसंहिता में $१०^{१२}$ के अंकों का वर्णन एवं उनके नामों का उल्लेख किया गया है।[१] तैत्तिरीयसंहिता[२] में एक (१) दश (१०) ....

---

१. अथर्ववेद; XIII. ३, ८

२. तैत्तिरीय सं.; ४.४.११.४; ७.२.२०.।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परार्द्ध ($१०^{१२}$) एवं पंचविंश ब्राह्मण[१] में भी इसी का अनुकरण करते हुए इसका विस्तार किया गया है।

मूल संकारक (Fundamental Operation)

वैदिक वाङ्मय में योग, वियोग, गुणन और भाग की चर्चा है। ऋग्वेद और ब्राह्मणों में एक हजार की संख्या को सम तीन भागों में विभाजित किया है लेकिन तैत्तिरीयसंहिता[२] में इसी उदाहरण को विस्तार से समझाया गया है तथा इससे और अधिक शतपथ ब्राह्मण में।[३]

भिन्न (Fraction)

ऋग्वेद में सामान्य भिन्न (Simple Fraction) दिए गए हैं, जैसे – अर्द्ध (१/२), त्रिपाद (३/४), मैत्रायणीसंहिता में पाद (१/२), शफ (१/८), कला (१/१६) का वर्णन है। शुल्बसूत्रों में सामान्य भिन्न की विस्तार से चर्चा की है, जैसे – त्रिभंग, त्र्यंश (१/३), पंचम भाग (१/५), त्रयस्त्रष्टा (३–), पंचकमस्य चतुर्विंश (१/२४ का १/५) अर्द्धसप्तम (७–), आदि।

प्रोग्रेसिव सिरीज़ (Progressive Series)

तैत्तिरीयसंहिता में प्राग्रेसिव सिरीज़ का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। सम और विषम संख्याओं का वर्णन किया गया है। पञ्चविंश ब्राह्मण[४] में दक्षिणा स्वर्ण मुद्रा ज्यामितीय अनुक्रम में देने का उल्लेख हुआ है, जैसे – १२, २४, ४८, ९६, १९२, ... ३,९३,२१८ तक।

---

१. पञ्चविंश ब्राह्मण; XVII. १४.I.२

२. तैत्तिरीय सं., VI.१.६

३. शतपथ ब्राह्मण; III.३.१.१३

४. पञ्चविंश ब्राह्मण; XVIII.३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शतपथब्राह्मण[१] और बाद में जैन साहित्य 'भद्रबाहु कल्पसूत्र' में ज्यामितीय श्रेणी (Geometrical Series) का विवरण मिलता है।

शुल्बसूत्रों में ज्यामिती का विस्तृत विवरण है। शुल्बसूत्रों में युग्मन (Combination) और सरल रेखीय चित्र का रूपान्तर (Transformation of Rectilinear Figure) वर्ग और आयताकार (Rectangle) में करने की पद्धति को बताया गया है। आपस्तम्ब, बोधायन, कात्यायन तीनों के विवरण में बोधायन अधिक विस्तार से लिखते हैं।

पायथागोरस प्रमेय

बोधायनशुल्बसूत्र में इसकी परिभाषा दी गई है। लगभग इसी प्रकार की भाषा में आपस्तम्ब और कात्यायन भी अपना मत देते हैं।

वृत्त को घेरना π

बोधायन प्रथम बार एक वृत्त बनाकर π का सन्निकट मान ३ देते हैं और इसे स्वीकार कर लेते हैं। बाद में मानव शुल्बसूत्र π का मान ३.१६०४९ देते हैं।

वर्ग समीकरण

इसी समीकरण का उपयोग यज्ञ-वेदी बनाने के सन्दर्भ में हुआ है। अन्तरमापीय समीकरण (Interminate Equations) ईंट का माप और उनकी संख्या ज्ञात करने में होता था। बोधायन शुल्बसूत्र में भवन निर्माण के विभिन्न चरणों में उपयोग हुआ है।

करणी (Root)

शुल्बसूत्रों में करणी, द्वि-करणी √२, त्रि-करणी √३, अष्टदश करणी √१८ आदि का विवरण दिया गया है। इसी में अपरिमेय

---

१. शतपथ ब्राह्मण; X. ५.४.७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संख्या, सन्निकट मान क्रम संचय (Permuation) युग्मन और पास्कल त्रिभुज आदि की चर्चा है।

रसायनशास्त्र

ऋग्वेद संहिता[१] में धातु का उपयोग स्वर्ण के साथ हुआ। इस युग में रजत धातु शोधन किस प्रकार किया जाता था, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं है, फिर भी छोटी-छोटी भट्टियाँ होती होगी जिनमें इन्हें पिघलाया जाता होगा। धातु के लिए सामान्यतः 'अयस' शब्द का उपयोग हुआ है। इसके अन्तर्गत हम ताँबा ले सकते हैं किन्तु बाद में यही (कृष्ण) अयस् शब्द लौह धातु के अर्थ में रूढ़ हो गया।

वैदिक जन स्वर्ण को अलौकिक शक्ति के रूप में मानते थे। अथर्ववेद[२] में स्वर्ण धारण करना लम्बी उम्र को देने वाला, कहा गया है। वैदिक जन किण्वन पेय (Fermented Drinks) लेते थे और किण्वन की विधि (Fermentation) भी जानते थे। इस युग में सोमरस दिव्यपान था।[३] ऋग्वेद में इसके प्रति सम्मान दर्शाया गया है। इसे अमृत तक कहा गया है। दूसरा किण्वन पेय मधु था। इसके अतिरिक्त जौ से सुरा भी बनाई जाती थी।

कृषि (Agriculture)

कृषि कर्म वैदिक काल में महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसके साथ सामाजिक और धार्मिक दायित्व भी जुड़े थे। कुछ गृहों में पशुपालन अधिकता से होता था। ऋग्वेद में कृषि की महत्ता पर बहुत कहा गया है क्योंकि इसके साथ उनके पशु, घोड़े और स्वयं का पोषण आदि जुड़ा है। ऋग्वेद[४] में कृषि सम्बन्धी प्रार्थना है। लगभग इसी प्रकार के

---

१. ऋग्वेद; I.८५.९

२. अथर्ववेद; XII.२.६

३. ऋग्वेद; VIII. ४८

४. ऋग्वेद; IV. ५७.१-३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विचार अथर्ववेद[१] में भी उपलब्ध हैं। वेदों में कृषि शब्द का प्रयोग हल चलाना तथा 'सस्य' उपज के लिए किया गया है। ऋग्वेद में यवम् कृष शब्द का प्रयोग है।

वैदिक काल में हल के लिए लांगल, फाल, सीर, सीता, दात्र, श्रृणी आदि शब्दों का प्रयोग है। लांगल कम नुकीला हल होता था जबकि 'सीर' बड़ा और भारी। तितउ (Siene) अनाज छानने के लिए शूर्प अनाज साफ करने के लिए और उर्दर अनाज मापने का बर्तन था।

लांगल (हल) अधिक उपयोग में आता था। इसे छः आठ या बारह बैलों द्वारा खींचा जाता था। जुते हुए खेत को उर्वरा या क्षेत्र कहा जाता था। शकृत (गोबर), केरिशा (सूखा शकृत) का प्रयोग भी मिलता है।

काठक संहिता में कृषि करने की विधियों की विस्तार से चर्चा है। अथर्ववेद[२] में कृषि के लिए कहा गया है कि जिस तरह मनुष्य प्रजनन क्रिया कर सन्तति उत्पन्न करता है, उसी प्रकार तैयार की गई भूमि (योनि) में बीजों का प्रकीर्णन करो।

वैदिक काल में गेहूँ, चावल और जौ महत्त्वपूर्ण अनाज थे। लेकिन ऋग्वेद में चावल का उल्लेख नहीं मिलता। यह सम्भव है कि ऋग्वेद संहिता के काल में चावल एक जंगली उपज हो रही हो। तैत्तिरीयसंहिता, काठक और अथर्ववेद में चावल के लिए तन्दुल, व्रीहि और शालि शब्दों का प्रयोग अलग-अलग किस्मों के लिए हुआ है। जैसे नीवार जंगली किस्म का चावल था।

वैदिक कृषक मिट्टी को उपजाऊ बनाना चाहते थे। तैत्तिरीयसंहिता[३] में चक्रीय उपज (Rotation crops) का उल्लेख है।

---

१. अथर्ववेद; III.१७

२. अथर्ववेद; III.१७.२, १

३. तैत्तिरीय सं.; V.१.७.३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैदिक काल में सामान्यत: दो फसलें ली जाती थीं। पालतू पशुओं में बैल, भेड़ बकरी और गाय प्रमुख थे। गाय का विशेष महत्त्व था, उसे पृथ्वी माँ का स्वरूप माना गया। ऋग्वेद में गाय की स्तुति में अनेक ऋचाओं की रचना की गई है।[१]

वैदिक साहित्य में कृषि कर्म से सम्बन्धित भरपूर जानकारी है, जैसे – भूमि को उपजाऊ बनाना, बीज का चयन एवं उपचार करना, आदि।

सिंचाई

सिंचाई का कार्य कुए और नदी से किया जाता था। ऋग्वेद[२] में पानी ऊपर चढ़ाने के लिए, अश्मचक्र का उल्लेख है जो पत्थर से बने चक्र पर चलता था। कुछ अन्य यन्त्रों के उल्लेख भी मिलते हैं, जैसे – द्रोण, घटयन्त्र[३] आदि।

वनस्पति विज्ञान (Botany)

वैदिक साहित्य में वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी है। पादप की रचना, और आकारिकी, उसके विभिन्न भाग – मूल, उसका अंकुरण, तना, शाखाएँ, पत्तियाँ, फूल और फल के स्पष्ट नामोल्लेख संहिता ब्राह्मण और उपनिषदों में है। ऋग्वेद में स्कन्ध (Trunk) तैत्तिरीय[४] और वाजसनेयीसंहिता में मूल (Root), तुल (Ṣhoot), काण्ड (Stem) वल्सा (Twiz) शाखा, पर्ण, फल और पुष्प का स्पष्ट वर्णन हुआ है।

---

१. ऋग्वेद; VI.२८

२. ऋग्वेद; X.१०१.७

३. ऋग्वेद; X.९३.१२

४. तैत्तिरीय सं.; VII.३.१९–२०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अथर्ववेद[1] में कई औषधीय पादपों के उल्लेख हैं। इन वनस्पतियों के रंग – बभ्रु (Brown), शुक (White), रोहिणी, कृष्ण, पृष्णी और असीक्नी आदि का उल्लेख है।

ऋग्वेद में काष्ठ दो प्रकारों में विभाजित है – कठोर और कोमल। काष्ठ के ऊपरी भाग को त्वक्, वल्कल (Skin) तथा आन्तरिक भाग को सार कहा गया है। कहीं-कहीं मज्जा (Pith) भी कहा है। तैत्तिरीय संहिता में बाहरी भाग को वल्क और आन्तरिक भाग को वल्कल कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद्[2] में वृक्ष की तुलना मनुष्य के शरीर के अङ्गों से की गई है। केश उसकी पत्तियाँ हैं, त्वचा उसकी छाल है और मनुष्य की तरह उसमें भी रक्त बहता है ... आदि। इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख है कि पादप आन्तरिक रूप से त्वक, शकर, किनाट तथा दारु और मज्जा में विभाजित है।

ऋग्वेद[3] में पादप आकारिकी के गुण-धर्म के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित है। वृक्ष (Trees), औषधि (Herbs), विरुध (Creepers)। पादपों को पुष्पवती और अपुष्पवती, फलवती और अफलवती में भी विभाजित किया गया है। सभी प्रकार की घास को तृण कहा गया है। अथर्ववेद में औषधि को कई उपवर्गों में उनकी पादप आकारिकी एवं संरचना के आधार पर वर्गीकृत किया गया है, जैसे – प्रस्तृनती, स्तम्बिनी, एकशुंगा, प्रतन्वती, अंशुमती, काण्डिनी, विशाखा, जीवला, नागहारिशा और मधुमती। वाजसनेयी संहिता, तैत्तिरीय, ब्राह्मण एवं अथर्ववेद में एक अन्य रोचक जानकारी उपलब्ध होती है जिसमें कुछ पौधों के नाम पर ही क्षेत्रों का नामकरण किया गया, जैसे – नाडवल, शिपाल्य।

---

१. अथर्ववेद; VIII. ७

२. बृहदारण्यक उपनिपद; III.९. २८

३. ऋग्वेद X.९७.१५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जन्तु विज्ञान (Zoology)

संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक, उपनिषद् कई प्रकार के जीव-जन्तुओं का उल्लेख करते हैं। मैकडानल और कीथ महोदय ने २६० से अधिाक जन्तुओं के नाम दिये हैं। राव महोदय ने भी विस्तार से इनकी चर्चा की है। इन जन्तुओं की सूची में अधिकतर स्तनधारी और पक्षी हैं। कुछ सरी-सर्पवर्ग और उनमें भी सर्प, मछली और कुछ कीट सम्मिलित हैं।

यजुर्वेद और अथर्ववेद में जन्तुओं के नाम बहुत अधिक हैं। अथर्ववेद में कृमि और सर्प का ज्यादा वर्णन है। अथर्व ऋषि ने सर्प-विष की जानकारी दी है। वे विभिन्न प्रकार के सर्प और सर्प-विद्या का वर्णन भी करते हैं। अथर्ववेद में सोलह प्रकार के कृमियों का उल्लेख है। ये कृमि किस प्रकार पशुओं और मनुष्यों को रोगग्रस्त करते हैं, इसकी जानकारी भी देते हैं। अट्ठाईस प्रकार के आर्थ्रोपोड के नाम और उनकी जानकारी वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। इनमें कीट, बिच्छु और मकड़ियों के उल्लेख भी हैं।

अकशेरुकी

इसके अन्तर्गत मोती-सीप, शंख-घोंघा का उल्लेख हुआ है। विभिन्न मछलियों के नामों की चर्चा भी है। सरी-सर्प वर्ग में २९ नाम उपलब्ध हैं। वैदिक जन को छिपकली तथा कछुए की भी जानकारी थी।

पक्षी और स्तनधारी पशु

वैदिक साहित्य में विभिन्न प्रकार के पक्षी तथा उनकी प्रजाति के विषय में जानकारी है, जैसे – गौरेया, छोटा सुग्गा, तोता, कोयल, कबूतर, आदि। शिकारी पक्षियों में गृध्र, बाज, श्येन पक्षी, चील, उल्लुक, थलचर, अर्द्धथलचर, बगुला, सारस, बत्तख, हंस आदि। स्तनधारी जन्तु भी वर्णित हैं – ऋग्वेद में भालू और शेर का उल्लेख है। पालतू पशुओं में गाय और अश्व को सम्मान प्राप्त था। ऋग्वेद में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुक्कुट का सन्दर्भ है। यहाँ तक कि मेंढक पर भी कुछ ऋचाएँ उपलब्ध हैं।[१]

इस प्रकार वैदिक साहित्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के पर्याप्त सन्दर्भ उपलब्ध हैं। जिनसे उनके विज्ञान के इतिहास एवं विचारों को जानना अत्यन्त रोचक है, क्योंकि इसके द्वारा हमें प्राचीनतम मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के वैज्ञानिक पहलू, उनकी दृष्टि तथा विज्ञान में प्रवीणता की जानकारी मिलती है। भारतीय इतिहास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नींव वैदिक काल में ही रखी जा चुकी थी।

---

१. ऋग्वेद; VII.१०३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेखक-परिचय

१. **आचार्य श्रीनिवास रथ**, पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, सम्प्रति कोषाध्यक्ष, म. सां. रा. वे. वि. प्रतिष्ठान, उज्जैन।

२. **डॉ. श्यामसुन्दर निगम** – निदेशक, कावेरी शोधसंस्थान, उज्जैन।

३. **डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी**, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर सागर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.)।

४. **आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी**, राष्ट्रीय आचार्य, उज्जैन।

५. **गुणाकर मुळे**, प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान के अध्येता एवं लेखक।

६. **डॉ. भगवती लाल् राजपुरोहित**, प्राध्यापक, सान्दीपनि महाविद्यालय, उज्जैन।

७. **डॉ. मोहन गुप्त**, अवकाश प्राप्त आई. ए. एस. अधिकारी, आयुक्त (उज्जैन सम्भाग) के पद से सेवा-निवृत्त, सम्प्रति ज्योतिष के अनुसन्धान में निरत।

८. **डॉ. सुशीला पन्त**, अध्यक्ष, प्रा. भा. इतिहास अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

९. **प्रो. दिनकर गोविन्द थत्ते**, पूर्व प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जामनगर, राष्ट्रीय आचार्य, शरीर रचना (भारत सरकार) निदेशक, अ. भा. शरीर शोध संस्थान, लखनऊ।

१०. **डॉ. सी. पी. त्रिवेदी**, प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, आलोट

११. **डॉ. सीताराम् दुबे**, रीडर, प्रा. भा. इतिहास, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

१२. **डॉ. श्रीमती कमलेश शर्मा**, सहा. प्रोफेसर, मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा।

१३. **डॉ. रवीन्द्र भारद्वाज**, माधव कालेज, उज्जैन।

१४. **डॉ. अशोक त्रिवेदी**, प्रा. भा. इतिहास अध्ययनशाला, विक्रम वि. वि., उज्जैन।

Bhavan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya
339

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ... Bharatiya Vidya
339

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

6